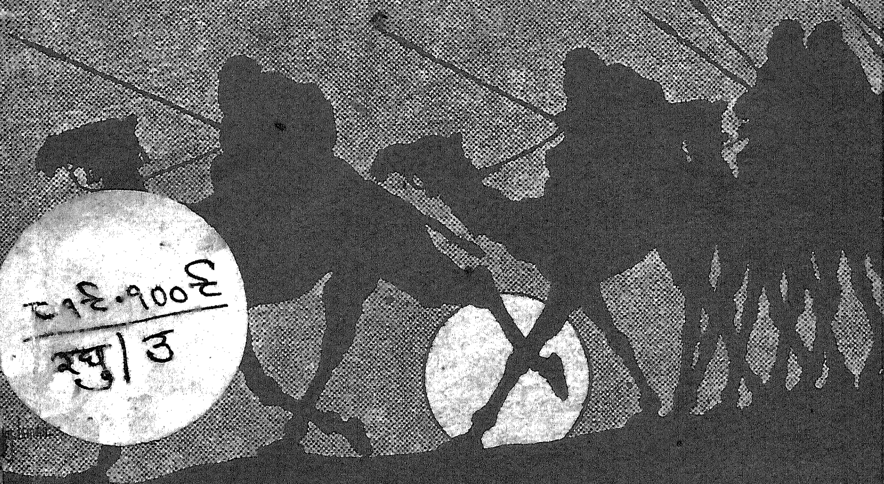
उर्दू कविता पर बातचीत

'फ़िराक़' गोरखपुरी



• नवरूप कार्यालय, इलाहाबाद •

उर्दू कविता

पर बातचीत

लेखक

रघुपति सहाय, 'फ़िराक़', एम० ए०

[अध्यापक, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी]

त रु ण का र्या ल य, इ ला हा बा द.

प्रकाशक
कृष्णानन्दन प्रसाद
तरुण कार्यालय, इलाहाबाद

द्वितीयावृत्ति—दिसम्बर, १९४५
मूल्य एक रुपया

मुद्रक—ए० बी० वर्म्मा,
शारदा प्रेस, नया कटरा,
प्रयाग

दो शब्द

यह पुस्तक उन लेखों का संग्रह है जो 'उर्दू कवियों की कल्पनाएँ' के शीर्षक से 'तरुण' मासिक पत्र में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं। पुस्तक-रूप में उन्हें निकालने के लिए उन लेखों में कुछ उचित हेर-फेर कर और स्थान-स्थान पर बहुत सी नई बातें जोड़ कर इस संग्रह को भरापूरा किया गया है और इस तरह उन लेखों को एक नया रूप दिया गया है।

लेखक स्वयं उर्दू के एक ख्याति-प्राप्त कवि हैं। पुस्तक में स्वरचित और सुप्रसिद्ध उर्दू कवियों के चुने हुए शेर उद्धृत कर लेखक ने उनकी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या की है, उनके शब्दों का प्रयोग, भाषा का सौन्दर्य, वाक्य-कौशल और शैली की सरसता, सरलता और स्वाभाविकता की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है और साथ ही हिन्दी कविता की शैली पर अपना स्वतन्त्र विचार प्रकट किया है। इन लेखों से हिन्दी-जगत् में कुछ हलचल भी मची है और, जैसा कि ऐसी बातों में होता है, उनके विचारों का विरोध और समर्थन भी हुआ है। आशा है कि इस विरोध और समर्थन द्वारा कुछ ऐसे विशेष विचार हिन्दी साहित्यिकों के सामने आवेंगे जिनसे लाभ होगा।

—प्रकाशक

उर्दू कविता

रोना-गाना सब को आता है। दूसरों के सामने न सही मगर अकेले में कभी कभी हर आदमी कुछ गुनगुनाता है। छोटा बच्चा भी पालने में लेटा हुआ कुछ गाने की कोशिश करता है। संसार और जीवन को शब्द और संगीत में घुला देने की वृत्ति या प्रेरणा सर्व-व्यापी है; और यहीं से कविता शुरू हो जाती है। लेकिन ऐसे लोग बहुत ज़्यादा नहीं होते जो और तो और, अपनी मातृभाषा की कविता में भी दूध-पानी अलग कर सकें; अच्छे-बुरे की परख कर सकें। रागी, बागी, रतन-पारखी सब लोग नहीं होते। अच्छे शेर, अच्छी पंक्ति की परख कभी कभी बड़े-बड़ों को नहीं होती। यही तमाशा संसार के साहित्यिकों में नज़र आता है। वर्ड्सवर्थ की कविता शेली और विलियम ब्लेक को पसन्द नहीं थी। शेली ने वर्ड्सवर्थ की कविता पढ़ कर उन्हें नैतिक हिजड़ा (moral eunuch) कहा; और ब्लेक ने कहा कि वर्ड्सवर्थ का संसार घास-पात का संसार (vegetable universe) है। स्विनबर्न की कविताओं से चिढ़ कर लॉर्ड मौरले ने उन्हें swine-born (सूअर का बच्चा) कहा था। हम केवल इसका अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि कबीर, सूर, तुलसी, और बिहारी एक-दूसरे की कविता को कैसा समझते! वाल्मीकि और तुलसीदास एक-दूसरे की रामायण को कैसा समझते! इसका फ़ैसला करने में मुझे हिचकिचाहट होती है। आजकल के एक श्रेष्ठ हिन्दी कवि ने रीति-काल के कवियों को सँपेरा कह दिया। और वह लोग उच्चकोटि की आधुनिक कविता को क्या कहते?

लेकिन इससे यह नहीं समझना चाहिए कि एक कवि दूसरे कवि की कीर्तियों को समझ ही नहीं सकता। कीट्स जो वर्ड्सवर्थ से

बहुत अलग व्यक्तित्व रखता था और जिसकी कल्पना और कविता वर्ड्सवर्थ से बहुत भिन्न है, वर्ड्सवर्थ को the master (गुरुदेव) कहता था; महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सर महम्मद इक़बाल की ख्याति से प्रभावित होकर *Modern Review* में लिखा था कि इक़बाल बहुत ऊँचा काम कर रहे हैं। ख़ुद इक़बाल फ़ारसी के कवि होते हुए हाफ़िज़ की शायरी को कोसते थे लेकिन श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर हाफ़िज़ का कलमा पढ़ते थे; और मशहूर जर्मन कवि गटो तो हाफ़िज़ और फ़ारसी कवियों पर जान देता था और इमर्सन भी। आजकल के सुप्रसिद्ध हिन्दी कवियों में हरिऔध, स्वर्गीय प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, निराला, गोपाल शरण सिंह, गुरुभक्त सिंह, रामकुमार वर्मा, नवीन, अज्ञेय, त्रिशूल, सियाराम शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, दिनकर, बच्चन, सुभद्राकुमारी चौहान, नेपाली, आरसी, पद्मकान्त मालवीय आदि के नाम हैं। कुछ और लोग भी प्रसिद्ध हैं, या प्रसिद्ध हो चले हैं। मैं पूरी सूची नहीं देता और न ब्रजभाषा के अच्छे कवियों का नाम देता हूँ। लेकिन यह लोग एक-दूसरे की कविता को कैसा समझते हैं और जन-साधारण में भी एक को पसन्द करने वाले दूसरों को कितना पसन्द करते हैं, यह एक रोचक प्रश्न है। हर फूल की रंगत और ख़ुशबू अलग होती है। यही हाल उर्दू में भी हमेशा से रहा है और अब भी है। मुझे तो एक अँग्रेज़ी समालोचक का यह वाक्य बहुत पसन्द है कि साहित्य में हम अपनी ख़ास पसन्द रख सकते हैं लेकिन किसी का बहिष्कार नहीं कर सकते—(In literature you can have preference but no exclusion)

बातचीत की इन बैठकों में आपको उर्दू के लगभग ढाई सौ चुने हुए शेर सुनाऊँगा। हिन्दी में उर्दू कविता के कई संग्रह कहने को तो मिलते हैं लेकिन वह बहुत कम संतोष-जनक हैं। इसका नतीजा यह हुआ

कि हिन्दी पाठकों में कुछ सीधे-सादे लोग तो उर्दू के सड़े-गले शेरों पर सर धुनने लगे और उन्हीं को झूम झूम कर गाने लगे; कुछ लोग जो नज़र रखते थे वह इन असंतोष-जनक संग्रहों को पढ़ कर उर्दू कविता के बारे में ग़लत राय क़ायम कर बैठे। इन संग्रहों में कुछ अच्छे शेर भी थे लेकिन ज़रूरत इसकी थी कि उनकी कला की तरफ़ संग्रह-कर्ता पाठकों का ध्यान आकर्षित करता। शेर सुनाते वक्त उसके शब्दों, भाषा के सौन्दर्य, वाक्य-कौशल, अर्थ की गहराई, संगीत, शैली की सरलता, सरसता और स्वाभाविकता पर भी प्रकाश डालने की अक्सर ज़रूरत होती है। कहावत है कि कहने वाले से सुनने वाला सरेख (श्रेष्ठ) चाहिए। यह भी कहावत है कि सुख़नगोई (काव्य-रचना) से सुख़न-फ़हमी (काव्य समझना) ज़्यादा मुश्किल है।

उर्दू भाषा की कहानी शायद तमाम भाषा की कहानियों से निराली है और रोचक भी। एक बनी-बनाई भाषा को ईरान और अरब के शब्दों से इस तरह रचा देना, इस तरह सँवार देना, इस तरह निखार देना कि वह एक अलग सजीव और सुसंस्कृत भाषा बन जाय, भाषाओं के इतिहास में एक अद्वितीय घटना है। किसी देश और जाति में ऐसी भाषा न मिलेगी जिसमें लगभग दस हज़ार विदेशी शब्द ज्यों के त्यों खपा दिये जायँ और इस तरह एक ऐसी रची हुई भाषा बन उठे जिस के नख-शिख देखने वाले देखते ही रह जायँ। लेकिन फ़ारसी-अरबी के दस-पाँच हज़ार शब्दों से ही उर्दू भाषा नहीं बनी है। उसका साँचा और ढाँचा सौ फ़ी सदी स्वदेशी है। खड़ी बोली के स्वदेशी साँचे और ढाँचे को उर्दू साहित्यकारों ने क्या से क्या कर दिया! हिन्दुस्तान की अन्य भाषाओं में यहाँ की बोलियाँ शायद ही इतनी सजाई गई हों जितना खड़ी बोली को उर्दू के साहित्यकारों ने सजाया है। और क्यों न सजाते? दिल्ली के आसपास जन-साधारण की बोली जब राजमहल की बोली बनेगी तो वह कहाँ से कहाँ पहुँच जायगी इसका अनुमान आप ख़ुद कर सकते हैं। जिस राजमहल के बनाने और

बहुत अलग व्यक्तित्व रखता था और जिसकी कल्पना और कविता वर्ड्सवर्थ से बहुत भिन्न है, वर्ड्सवर्थ को the master (गुरुदेव) कहता था; महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सर महम्मद इक़बाल की ख्याति से प्रभावित होकर *Modern Review* में लिखा था कि इक़बाल बहुत ऊँचा काम कर रहे हैं। ख़ुद इक़बाल फ़ारसी के कवि होते हुए हाफ़िज़ की शायरी को कोसते थे लेकिन श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर हाफ़िज़ का कलमा पढ़ते थे; और मशहूर जर्मन कवि गटा तो हाफ़िज़ और फ़ारसी कवियों पर जान देता था और इमर्सन भी। आजकल के सुप्रसिद्ध हिन्दी कवियों में हरिऔध, स्वर्गीय प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, निराला, गोपाल शरण सिंह, गुरुभक्त सिंह, रामकुमार वर्मा, नवीन, अज्ञेय, त्रिशूल, सियाराम शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, दिनकर, बच्चन, सुभद्राकुमारी चौहान, नेपाली, आरसी, पद्मकान्त मालवीय आदि के नाम हैं। कुछ और लोग भी प्रसिद्ध हैं, या प्रसिद्ध हो चले हैं। मैं पूरी सूची नहीं देता और न ब्रजभाषा के अच्छे कवियों का नाम देता हूँ। लेकिन यह लोग एक-दूसरे की कविता को कैसा समझते हैं और जन-साधारण में भी एक को पसन्द करने वाले दूसरों को कितना पसन्द करते हैं, यह एक रोचक प्रश्न है। हर फूल की रंगत और ख़ुशबू अलग होती है। यही हाल उर्दू में भी हमेशा से रहा है और अब भी है। मुझे तो एक अँग्रेज़ी समालोचक का यह वाक्य बहुत पसन्द है कि साहित्य में हम अपनी ख़ास पसन्द रख सकते हैं लेकिन किसी का बहिष्कार नहीं कर सकते—(In literature you can have preference but no exclusion)

बातचीत की इन बैठकों में आपको उर्दू के लगभग ढाई सौ चुने हुए शेर सुनाऊँगा। हिन्दी में उर्दू कविता के कई संग्रह कहने को तो मिलते हैं लेकिन वह बहुत कम संतोष-जनक हैं। इसका नतीजा यह हुआ

कि हिन्दी पाठकों में कुछ सीधे-सादे लोग तो उर्दू के सड़े-गले शेरों पर सर धुनने लगे और उन्हीं को झूम झूम कर गाने लगे; कुछ लोग जो नज़र रखते थे वह इन असंतोष-जनक संग्रहों को पढ़ कर उर्दू कविता के बारे में ग़लत राय क़ायम कर बैठे। इन संग्रहों में कुछ अच्छे शेर भी थे लेकिन ज़रूरत इसकी थी कि उनकी कला की तरफ़ संग्रह-कर्ता पाठकों का ध्यान आकर्षित करता। शेर सुनाते वक़्त उसके शब्दों, भाषा के सौन्दर्य, वाक्य-कौशल, अर्थ की गहराई, संगीत, शैली की सरलता, सरसता और स्वाभाविकता पर भी प्रकाश डालने की अक्सर ज़रूरत होती है। कहावत है कि कहने वाले से सुनने वाला सरेख (श्रेष्ठ) चाहिए। यह भी कहावत है कि सुख़नगोई (काव्य-रचना) से सुख़न-फ़हमी (काव्य समझना) ज़्यादा मुश्किल है।

उर्दू भाषा की कहानी शायद तमाम भाषा की कहानियों से निराली है और रोचक भी। एक बनी-बनाई भाषा को ईरान और अरब के शब्दों से इस तरह रचा देना, इस तरह सँवार देना, इस तरह निखार देना कि वह एक अलग सजीव और सुसंस्कृत भाषा बन जाय, भाषाओं के इतिहास में एक अद्वितीय घटना है। किसी देश और जाति में ऐसी भाषा न मिलेगी जिसमें लगभग दस हज़ार विदेशी शब्द ज्यों के त्यों खपा दिये जायँ और इस तरह एक ऐसी रची हुई भाषा बन उठे जिस के नख-शिख देखने वाले देखते ही रह जायँ। लेकिन फ़ारसी-अरबी के दस-पाँच हज़ार शब्दों से ही उर्दू भाषा नहीं बनी है। उसका साँचा और ढाँचा सौ फ़ी सदी स्वदेशी है। खड़ी बोली के स्वदेशी साँचे और ढाँचे को उर्दू साहित्यकारों ने क्या से क्या कर दिया! हिन्दुस्तान की अन्य भाषाओं में यहाँ की बोलियाँ शायद ही इतनी सजाई गई हों जितना खड़ी बोली को उर्दू के साहित्यकारों ने सजाया है। और क्यों न सजाते? दिल्ली के आसपास जन-साधारण की बोली जब राजमहल की बोली बनेगी तो वह कहाँ से कहाँ पहुँच जायगी इसका अनुमान आप ख़ुद कर सकते हैं। जिस राजमहल के बनाने और

बसाने वालों ने ताजमहल और मुग़ल निर्माण-कला के ऐसे शानदार स्मारक छोड़े हैं उन्हींने तो खड़ी बोली को परवान चढ़ाया। जिस तरह मुग़लों ने अपने निर्माण-कला (architecture) में ईंट, रोड़े, पत्थर को न जाने क्या बना दिया उन्हीं की औलाद ने तो खड़ी बोली को भी नया जन्म दिया, कितना सुघड़, कितना सिजिल ! फ़ारसी-अरबी शब्दों से अलग करके खड़ी बोली का जितना प्रौढ़, विकसित और उन्नत रूप उर्दू में मिलता है, उसकी जितनी संभावनाएँ उर्दू में पूरी और साकार होती हुई नज़र आती हैं, उसमें जितनी सजीविता, गहराई और उभार और थरथराहट उर्दू के साहित्यकारों ने भर दिये हैं वह आप अपनी मिसाल है। इसे कितने लोगों ने सोचा है कि अगर खड़ी बोली को इतना संगठित और सुसंस्कृत उर्दू के साहित्यकार न बना देते तो आधुनिक हिन्दी ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी इत्यादि के भँवर से शायद ही उभर पाती। उर्दू के साहित्यकारों ने और दिल्ली प्रान्त के भद्र समाज ने खड़ीबोली या पच्छाँही हिन्दी बोलने वालों में वह आत्म-विश्वास पैदा कर दिया कि राष्ट्र-भाषा का आन्दोलन कहाँ से कहाँ पहुँच गया नहीं तो क्या अजब है कि बँगला या मराठी इत्यादि उन्नत भाषायें मैदान में आ जातीं। मगर हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी ही हो सकती है, उर्दू नहीं। यह राष्ट्र-भाषा उर्दू को मिटा कर नहीं, बल्कि हिन्दी में उर्दू के गुण लाकर बनाई जा सकती है। सोचिये तो कि अगर स्वर्गीय प्रेमचन्द अपनी पूरी प्रतिभा के होते हुए भी एक अक्षर उर्दू न जानते होते और सिर्फ़ हिन्दी और संस्कृत जानते तो क्या उनकी भाषा इतनी चुस्त और निखरी हुई होती ?

ग़ालिब के दो-तीन शेर सुनिए जिनमें सौ फ़ी सदी खड़ी बोली शब्दों की छबि है और कहीं एक भी फ़ारसी शब्द नहीं है—

ग़ालिब बुरा न मान, जो कोई बुरा कहे।
ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे॥

लाग हो गर कुछ तो हम समझें लगाओ।
जब न हो कुछ भी तो धोका खायें क्या॥
पूछते हैं वह कि ग़ालिब कौन है।
कोई बतलाओ कि हम बतलायें क्या॥

(बतलाये के बदले 'बतलाओ' में कैसी ठठोल है !) मेरी चौथी बातचीत में ग़ालिब की वह ग़ज़ल भी देखिएगा जिसमें हर दूसरे मिसरे में उसने ठेठ हिन्दी भाषा के दरिया बहा दिये हैं—

क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने।

रही बात फ़ारसी और अरबी शब्दों की जो उर्दू में आ जाते हैं। तो यह शब्द दो तरह के हैं। एक तो वह फ़ारसी और अरबी शब्द जो इतने सरल थे और जिनका उच्चारण इतना सुगम था कि वह हिन्दू-मुसलमान बच्चे की ज़बान पर चढ़ गये हैं। यह शब्द मुस्लिम राज के नाजायज़ दबाव से या बर्छी की नोक पर हमारे गले के नीचे नहीं उतारे गये। इन शब्दों का प्रचलित हो जाना भाषा में survival of fhe fittest के नियम के अनुसार हुआ है। दूसरे वह शब्द हैं जो विद्वत्तापूर्ण हैं और जिनका उर्दू कविता में कम से कम प्रयोग अच्छा समझा जाता है। हाँ, तो नतीजा यह निकला कि उर्दू साहित्य ख़ास कर उर्दू कविता में हज़ारों हिन्दी शब्द, हज़ारों हिन्दी महावरे, हज़ारों सुन्दर वाक्य जो सौ फ़ी सदी ठेठ हिन्दी शब्दों से बने हुए हैं अपनी छटा दिखा रहे हैं और यह बात हमें किसी काल की हिन्दी कविता में मुश्किल से मिलेगी। फिर उन अरबी-फ़ारसी शब्दों का नम्बर आता है जो किसी स्कूल, या मदरसे में या किसी किताब से सीखने नहीं पड़ते और जिनका हमारे जीवन में वही स्थान है जो तद्भव शब्दों का है। तीसरे नम्बर पर वह फ़ारसी-अरबी शब्द आते हैं जिनके लिए कुछ शिक्षा की ज़रूरत है। हिन्दी-भाषा और हिन्दी कविता के निर्माण में उस समय तक सफलता नहीं हो सकती, हिन्दी साहित्य और कविता हमारी मातृभाषा का साहित्य और कविता तब तक बन ही नहीं सकती जब तक

ऊपर बताये हुए नम्बर एक और नम्बर दो के शब्द, टुकड़े और वाक्य उसमें रस बस न जायें। हाँ, तीसरे नम्बर पर जो विद्वत्तापूर्ण फ़ारसी शब्द उर्दू में आये हैं और जिनका अधिक प्रयोग उर्दू में भी अच्छा नहीं समझा जाता उसी मात्रा में हिन्दी में संस्कृत शब्दों को आने का अधिकार है। हिन्दी संस्कृत नहीं है। उन थोड़ी सी संस्कृत-प्रधान हिन्दी रचनाओं की बात अलग है जो हिन्दी की मुख्य शैली से कुछ या बहुत भिन्न हैं और रहेंगी। अन्त में यही कहूँगा कि जहाँ तक खड़ी बोली का सम्बन्ध है यह प्रलय काल तक नहीं हो सकता कि अच्छी उर्दू की खड़ी बोली कुछ और हो और अच्छी हिन्दी की खड़ी बोली कुछ और। खड़ी बोली एक थी, एक है और एक रहेगी।

उर्दू भाषा की तरह उर्दू कविता का इतिहास भी बड़ा रोचक है। फ़ारसी-अरबी के छन्द, फ़ारसी-अरबी कविता की क़िस्में जैसे ग़ज़ल, मसनवी, क़सीदा, क़ता, रुबाई, मुसद्दस इन सब की चमकती हुई मिसालें उर्दू कविता में मिलती हैं। कुछ ऐसे छन्दों की भी मिसालें मिलती हैं जो हिन्दुस्तान के हैं। योरोप के सम्पर्क और पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से और विश्वव्यापी नये जागरण के प्रभाव से भी अतुकान्त कविताओं और मुक्त छन्द की भी रचना उर्दू में धूम-धाम से हुई है और प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी उर्दू कविता की भी काफ़ी मिसालें अब उर्दू कविता में मिलने लगी हैं। बातचीत की इन सोहबतों में मैं जो शेर आपको सुनाऊँगा वह अधिकतर उर्दू ग़ज़लों से लिये जायँगे। ग़ज़लों के अच्छे शेर व्यापक होते हैं। उनकी पहुँच बहुत दूर तक होती है। ग़ज़लों की फ़ुटकर पंक्तियों में जितनी भरपूर बात कही जा सकती है उतनी भरपूर बात और तरह से कहना कठिन है। ग़ज़ल का हर शेर अपनी दुनिया आप बनाता है। उसमें ऐसा जादू होता है कि जीवन की अनेक परिस्थितियों या अनेक प्रसंगों में, अनेक अवसरों पर, अनेक पारस्परिक सम्बन्धों और व्यवहारों पर वह लागू हो जाता है। एक बार सुन लेने पर वह बराबर हमारे दिलों में चुटकियाँ लेता रहता है।

उर्दू ग़ज़ल में जो चोटी के शायर अब तक हुए हैं उनमें से कुछ के नाम उनके काल के अनुसार मैं नीचे देता हूँ—

(१) मीर, सौदा, दर्द, सोज़ की कविता का ज़माना लगभग १७२५ ईस्वी से १८२५ ईस्वी तक। यह चारों कवि उर्दू ग़ज़ल के चार स्तम्भ माने जाते हैं।

(२) इन्शा, मसहफ़ी, जुरत की कविता का ज़माना लगभग १७८५ ईस्वी से १८५० तक।

(३) ग़ालिब, ज़ौक़, मौमिन और बहादुर शाह ज़फ़र की कविता का ज़माना १८१५ से १८७० तक, और लखनऊ में नासिख़ और आतश का ज़माना लगभग ग़ालिब ही का ज़माना।

(४) अमीर मीनाई, दाग़, जलाल, रेयाज़ और जलील १८६० से लेकर लगभग १६०५ तक।

(५) आसी, शाद अज़ीमाबादी, हाली की रचनाओं का ज़माना लगभग १८७५ से १६१४ तक। शाद अज़ीमाबादी हाल तक ज़िन्दा रहे हैं।

(६) अज़ीज़, सफ़ी, महशर, हसरत मोहानी, यगाना, असग़र, फ़ानी, जिगर, अकबर, इक़बाल, चकबस्त और जोश आधुनिक काल।

उर्दू ग़ज़ल हर ज़माने में सिर्फ़ भाषा के लेहाज़ ही से नहीं बल्कि अपने मिज़ाज और भाव के लेहाज़ से भी बदलती रही है। मैंने जिन कवियों के नाम ऊपर गिनाये हैं उनमें हर एक ने अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप ग़ज़ल पर लगाई है, हर एक ने ग़ज़ल में एक नई दुनिया की सृष्टि की है; और यों तो साहित्य में नई-पुरानी आवाज़ें साथ-साथ मिल कर गूँजती हुई सुनाई देती हैं। हम हर शेर को सुन कर कह सकते हैं—

अरे ये कब के फ़साने सुनाये जाते हैं।

हर शेर को सुन कर ऐसा मालूम होता है कि—

बात पहुँचती है कहाँ से कहाँ।

मैंने यह किताब क़लम-दावात लेकर नहीं लिखी। यह पूरी किताब बातचीत है और बातचीत ही की तरह आद्योपान्त बोल कर लिखाई गई है और चूँकि यह किताब बोल कर लिखाई गई है इस लिए मेरी असावधानी के कारण इक्का-दुक्का जुमलों में कुछ उलझाव भी आ गया है लेकिन यह आशा करने का साहस करता हूँ कि प्रायः इस किताब भर में आपको बातचीत की शैली का पूरा मज़ा आयेगा। एक बात और। मैंने अपने शेरों को भी उर्दू के महाकवियों के शेरों के साथ उद्धृत कर दिये हैं। इसका यह मतलब नहीं कि मैं ख़्वाह म ख़्वाह अपने शेरों की आप से प्रशंसा चाहता हूँ।

अन्त में मेरा यही निवेदन है कि उर्दू की उत्कृष्ट कविता को आप हल्की-फुल्की या चलती-फिरती हुई चीज़ समझ कर न पढ़ें। अच्छे शेरों में जीवन के अनुभवों का निचोड़ होता है। कविता के आनन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है।

—रघुपति सहाय

पहली बातचीत

उर्दू भाषा हिन्दी के उस रूप से बनी है जिसमें लोग दिल्ली के आसपास मुसलमानों के आने के पहले बातचीत किया करते थे। लेकिन पच्छाहीं हिन्दी या खड़ी बोली में कविता मुसलमानों ही ने शुरू की। ब्रजभाषा, अवधी इत्यादि जो हिन्दी के रूप हैं उनमें तो उच्च कोटि का हिन्दी साहित्य भी रचा गया लेकिन पश्चिमी हिन्दी का साहित्यिक रूप कविता में उर्दू के पहले कहाँ था? मैं जब इस प्रश्न पर विचार करता हूँ और पश्चिमी हिन्दी के साहित्यिक रूप की मिसालें ढूँढ़ता हूँ तो कबीर की कुछ पंक्तियों में पश्चिमी हिन्दी का रूप दिखाई देता है और उसकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। जैसे उनकी एक ही पंक्ति ले लीजिए—

करले सिंगार नार अलबेली, साजन के घर जाना होगा।

इस पंक्ति में जो क्रिया लायी गई है यानी 'जाना होगा' यह उर्दू की साफ़ साफ़ मिसाल है। शायद हिन्दी के किसी कवि ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पहले 'जाना होगा' नहीं लिखा। लेकिन उर्दू कवियों ने शुरू से ही इसके सिवा कुछ नहीं लिखा। तो नतीजा यह निकला कि पश्चिमी हिन्दी और उसके रूपों को जिसे हिन्दी साहित्यिकों ने काव्य-रचना में छोड़ रक्खा था, उर्दू साहित्यिकों ने अपनाया और आज हिन्दी गद्य-पद्य ने भी हिन्दी के और तमाम रूपों को छोड़ कर इसी रूप को अपनाया।

यह भी अजीब बात है कि उर्दू वाले हिन्दी के उन रूपों से नहीं लड़ते जिन्हें अवधी और ब्रजभाषा कहा जाता है। उनकी तकरार हिन्दी की खड़ी बोली वाले रूप से होती है जो उर्दू से बहुत कुछ मिलता-

जुलता है और जिससे उर्दू बहुत कुछ मिलती-जुलती है। जहाँ तक क्रियाओं और सर्वनाम, उपसर्ग और सैकड़ों संज्ञाओं और विशेषणों, मुहावरों और बोलचाल का सम्बन्ध है वहाँ तक तो आजकल की हिन्दी और हमेशा की उर्दू एक ही हैं और एक ही सी रहेंगी। दोनों में अन्तर इतना ही है कि समास, कुछ छन्द और विभक्ति और कुछ विशेषणों और संज्ञाओं में उर्दू वाले फ़ारसी का अनुकरण करते हैं और हिन्दी वाले संस्कृत का। इसके साथ साथ यह भी याद रखना चाहिए कि फ़ारसी अरबी के बहु-संख्यक शब्द हिन्दी शब्द-भण्डार के अंश बन चुके हैं और उनको करोड़ों बे पढ़े-लिखे हिन्दू बच्चे से बूढ़े तक बराबर अपनी हिन्दी में बोलते और लिखते हैं। मैं कुछ शब्द यहाँ पर देता हूँ जिनके बारे में कभी शंका भी नहीं होती कि यह फ़ारसी हैं जैसे जवान, मर्द, बीमार, हवा, गर्म, सर्द, और ऐसे ही सैकड़ों शब्द हैं जिन्हें चाहे हम यह जानते भी हों कि वह फ़ारसी के शब्द हैं लेकिन उन्हें हिन्दी वाले अपनाए हुए हैं। अगर गुजराती, मराठी, बंगला, तामील, तेलगू, मैथिल और संस्कृत के गद्य-पद्य एक हिन्दी और सिर्फ़ हिन्दी जानने और पढ़ने वाले को नागरी अक्षरों में दिये जाएँ और उर्दू गद्य-पद्य भी नागरी अक्षरों में दिये जाएँ तो उर्दू को छोड़ कर अन्य भाषाओं को तो वह नागरी अक्षरों में भी नहीं समझ सकेगा। उर्दू गद्य-पद्य का तीस-चालीस फ़ीसदी हिस्सा तो वह उसी तरह बेखटके समझ लेगा जिस तरह कोई उर्दू का विद्वान उसे समझता है और साठ-सत्तर फ़ी सदी हिस्सा दो-चार विशेषणों और संज्ञाओं का अर्थ बताने पर ही पूरी तरह समझ लेगा। इसलिए जहाँ तक भाषा और कोष का संबंध है उर्दू और हिन्दी में बहुत मामूली अन्तर है। संस्कृत से निकली हुई दूसरी भाषाओं में जिनका नाम ऊपर आ चुका है और हिन्दी में भी भाव और रस और संस्कृति की समानता तो है लेकिन भाषा की वह समानता और एकता नहीं है जो क्रिया, उपसर्ग और सर्वनाम इत्यादि से सम्बन्ध रखती है।

उर्दू वाले यह रोना तो रोते हैं कि हिन्दी के प्रचार के कारण उर्दू का हक़ मारा जा रहा है लेकिन उनको यह बात न सूझी कि अगर उर्दू साहित्य के गद्य-पद्य को वह दो लिपियों में छाप दें यानी फ़ारसी लिपि के साथ-साथ नागरी लिपि में उर्दू की किताबें यदि वह प्रकाशित कर दें तो उर्दू घर घर और गाँव गाँव में फैल जाय क्योंकि वर्तमान हिन्दी गद्य-पद्य अभी उतनी सरल और स्वाभाविक नहीं है, उतनी मँजी हुई नहीं है, उसमें ठेठ बोली का वह ठाठ नहीं है, उसमें उतने रोचक, रसीले और रङ्गीन तरीक़े पर हमारी बोली का प्रयोग नहीं किया गया है जैसा प्रायः उर्दू में किया गया है।

मैं यह नहीं कहता कि उर्दू और हिन्दी में जो अन्तर है उसमें कोई तत्व नहीं या उसका कोई महत्व नहीं। हमारी रूढ़ियाँ, हमारी संस्कृति हमारे भाव और रस, हमारी कल्पना की दुनिया और हमारे जीवन की ध्वनि उर्दू साहित्य में कुछ तो आ सकती है और आई है लेकिन बहुत कुछ नहीं आ सकी है और उस वक़्त तक आ नहीं सकती थी जब तक फ़ारसी अरबी शब्दों को घटा कर पाँच या दस फ़ीसदी न कर दिया जाय और संस्कृत शब्दों को बढ़ा कर पचीस-तीस या चालीस फ़ीसदी न कर दिया जाय। बाक़ी शब्द ठेठ हिन्दी के हों। हाँ, उस ठेठ हिन्दी के मुहावरे और उनका परिमार्जित रूप, उनकी लोच और उनकी सजावट जिस तरह उर्दू में मौजूद हैं उसे हिन्दी-गद्य-पद्य का अंश बना लेना चाहिए।

लेकिन हर साहित्य का जहाँ एक पृथक संसार होता है वहाँ उसका एक विश्वव्यापी हिस्सा भी होता है और इस तरह अगर हिन्दी साहित्य और लेखक उर्दू या दूसरे साहित्य से अच्छी तरह परिचित और प्रभावित हो जाएँ तो यह असम्भव है कि उनकी हिन्दी रचनाओं पर अन्य साहित्यों और उनकी ध्वनियों का प्रभाव न पड़े। मैं अब थोड़े से उर्दू शेर यहाँ देता हूँ जिनके लालित्य और जिनकी सचाई से सारे संसार के मनुष्य प्रभावित हो सकते हैं।

तमाम उम्र इसी एहतियात में गुज़री।
कि आशियाँ किसी शाख़े चमन पै बार न हो॥

—महशर, लखनवी

सारी उम्र इसी बचाव में कट गयी कि मेरा घोंसला बाग़ की किसी डाली पर भारी न पड़े यानी किसी डाली के लिए वह भार न बन जाय।

सादगी की इन्तेहा कर दी जवानाने चमन।
उम्र भर रंगे मिज़ाजे बाग़बाँ देखा किये॥

—सफ़ी, लखनवी

ऐ बाग़ के नौजवानो, तुमने सिधाई या भोलेपन की हद कर दी। सारी उम्र माली के मिज़ाज का रङ्ग देखते रहे!

क़फ़स से छुट के वतन का सुराग़ भी न मिला।
वो रंगे लालाओगुल था कि बाग़ भी न मिला॥

—फ़िराक़

पिंजड़े से छुटकारा पाने पर घर का पता भी न मिला। फूलों के वह तेवर थे, उनके रङ्ग-ढङ्ग ऐसे बदल चुके थे कि मैं अपना बाग़ खुद ही न पहचान सका। इसी का दूसरा पहलू नीचे वाले शेर में देखिये—

छुट के घर आ गये असीर तेरे।
लेकिन अब इनको कौन पहचाने॥

—फ़िराक़

अब घर वाले छूटे हुए क़ैदियों को नहीं पहचानते क्योंकि वह बहुत बदल चुके हैं। इसी बात या परिस्थिति का तीसरा पहलू इस शेर में देखिए—

अब चमन में भी किसी सूरत से जी लगता नहीं।
हाँ, मगर जब तक क़फ़स में थे क़फ़स बदनाम था॥

—चौधरी जगतमोहन लाल, 'रवाँ'

यहाँ छूटने के बाद क़ैदी ही का जी कुछ उचटा उचटा रहता है। चमन तो वही है, चमन वाले उसे पहचानते भी हैं लेकिन उसी की

तबीयत उचट चुकी है और अपने ऊपर वह कितना करुणापूर्ण व्यंग करता है कि जब तक हम क़फ़स (पिंजड़ा) में थे क़फ़स को बुरा कहते थे। कवि ने कर्ता को हटाकर यानी यह कह कर कि 'क़फ़स बदनाम था' (न कि यह कह कर कि हम क़फ़स को बदनाम करते थे) अद्भुत वाक्य-कौशल का सबूत दिया है।

ख़ामये .कुदरत ने दिल का नाम ये कह कर लिखा।
हर जगह इस लफ्ज के मानी बदलते जायँगे॥

—अज़ीज़, लखनवी

प्रकृति की लेखनी ने दिल का नाम यह कह कर लिखा था कि जहाँ जहाँ यह शब्द आयेगा या इस शब्द का प्रयोग होगा वहाँ वहाँ इसके अर्थ बदलते जायँगे। दिल या मनुष्य की रङ्ग-रङ्ग तबीयत पर कितनी अच्छी रौशनी डाली है। तमाम प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसके पृथक व्यक्तित्व का विकास होता है। शाद अज़ीमाबादी ने भी कहा है—

सुबू अपना अपना है जाम अपना अपना।
किये जाओ मैख़ारो काम अपना अपना॥

अपना अपना घड़ा है, अपना अपना प्याला है। ऐ शराब पीने वालो, अपना अपना काम किये जाओ अर्थात् अपने अपने ढङ्ग से खिलते और विकसित होते जाओ।

अल्लाह शबे हिज्र दोबारा न देखाये।
पहरों तो मुझे याद तेरा नाम न आया॥

—एक अज्ञात कवि

ईश्वर न करे कि वियोग की रात मुझे फिर देखना पड़े। मैं वियोग की पहली रात में इतना विक्षिप्त हो गया था कि पहरों तेरा नाम तक मुझे याद न आया। वियोग की पीड़ा के सदमे ऐसे झटके देते हैं कि जिसका वियोग है उसी का नाम याद नहीं आता। एक विशेष मानसिक अवस्था की कितनी सूक्ष्म और कितनी सरल परिभाषा है!

नशये हुस्न को इस तरह उतरते देखा।
ऐब पर अपने कोई जैसे पशेमाँ हो जाय॥

—जिगर, मुरादाबादी

सौंदर्य के नशे को इस तरह उतरते देखा जैसे कोई अपने किसी दोष पर लज्जित हो जाय। किसी रूपवान या रूपवती की उम्र का जब उतार होता है तो उसकी जो अवस्था होती है उसे किस अलबेले ढङ्ग से बताया है!

वो गलियाँ अभी तक हसीनोजवाँ हैं।
जहाँ मैंने अपनी जवानी लुटा दी॥

—सागर

जिगर, मुरादाबादी ने जो बात कही थी उसमें शोक और विस्मय का अंकुर था। उम्र ढलने को नशये जवानी का उतरना कहा था। यहाँ वही बात, वही अनुभव एक ओज के साथ व्यक्त किया गया है और दुनिया भर के रूपवानों और रूपवतियों की तरफ़ से कवि कह उठता है कि जहाँ हमने अपनी जवानी लुटा दी वह गलियाँ अब तक जगमगा रही हैं।

महब्बत में एक ऐसा वक्त भी आता है इन्साँ पर।
सितारों की चमक से चोट लगती है रगे जाँ पर॥

—सीमाब, अकबराबादी

प्रेम में मनुष्य पर एक ऐसा समय भी आता है जब सितारों की चमक से उस रग पर चोट लगती है जिसमें प्राण बसता है। हिन्दी कवि ने भी कहा है कि विरह में चाँदनी रात ऐसी मालूम होती है जैसे नागिन काट कर उलट जाय। चाँदनी रात भी उजली, नागिन का पेट भी उजला होता है।

ख़ुदा जाने ये कैसी रह गुज़र है किसकी तुर्बत है।
वो जब गुज़रे इधर से गिर पड़े कुछ फूल दामन से॥

—एक अज्ञात कवि

ईश्वर जाने यह कैसा रास्ता है और यह किसकी क़ब्र है कि जब जब वह इधर से गुज़रे उनके दामन से कुछ फूल अकस्मात क़ब्र पर गिर पड़े। माशूक़ ने जान-बूझ कर फूल चढ़ाए लेकिन इस ढङ्ग से कि मालूम हुआ कि फूल अकस्मात गिर पड़े। उसके प्रेम में भी एक निष्ठुरता की झलक है। जब कोई निष्ठुर और प्यारा व्यक्ति कहीं आता है तो पूछते हैं—"कहाँ राह भूल पड़े ?"

हयात हो कि अजल सबसे काम ले ग़ाफ़िल।
कि मोख़्तसर भी है कारे जहाँ दराज़ भी है॥

—फ़िराक़

जीवन हो या मृत्यु, ऐ भोले-भाले आदमी, दोनों से काम लो क्योंकि दुनिया का काम छोटा भी है और बड़ा भी, संक्षिप्त भी है और विस्तृत भी। निष्काम क्रिया के आदर्श को इन पंक्तियों में व्यक्त करने की कोशिश की गई है। जब तक जियो जाओ, काम किये जाओ। अगर मर जाओ तो समझो कि तुम्हारा काम हो गया।

ज़िन्दगानी की हक़ीक़त से नहीं हम वाक़िफ़।
मौत का नाम जो सुनते हैं तो मर जाते हैं॥

—इबरत, गोरखपुरी

हम जीवन का अर्थ तो समझते ही नहीं इसी से जब मृत्यु का नाम सुनते हैं तो मारे डर के मर जाते हैं। जो जीवन के असली रूप को समझता है वह मृत्यु से नहीं डरता।

शमा ने सर पै रखी आग क़सम खाने को।
ब .खुदा मैंने जलाया नहीं परवाने को॥

—पंडित दयाशंकर, नसीम

शमा ने सौगन्ध खाने के लिए अपने सर पर आग रखी (यानी अपने को अग्नि के नीचे कर के क़सम खाई), मैं ईश्वर की शपथ खाती हूँ कि मैंने पतिंगे को नहीं जलाया। 'मैंने' पर ज़ोर देकर पढ़िए तो मतलब साफ़ हो जायगा यानी पतिंगे के दिल में .खुद आग थी जिससे

वह जल गया। कुछ जातियों में ये रस्म थी कि आग या दीपक को अपने ऊपर रख कर क़सम खायँ। अब भी अग्नि को साक्षी बना कर क़सम खाते हैं।

बस एक हवा के झोंके थे अज़ सुब्हे अजल ता शामे अबद।
जन्नत में उन्हीं से राहत थी दोज़ख में उन्हीं से अज़ाब भी थे॥

—फ़िराक़

सृष्टि के आरम्भ से सृष्टि के अन्त तक एक ही हवा के झोंके चलते रहे। स्वर्ग में इन्हीं झोकों से ठंढक और शान्ति थी, नरक में इन्हीं झोकों से पीड़ा और जलन होती रही।

जुम्बिशे बर्गे शजर से ता ब तूफ़ाने हयात।
एक ही पैग़म्बर था, एक ही पैग़ाम था॥

—चौधरी जगतमोहन लाल, 'रवाँ'

पेड़ के पत्ते के अल्प कम्पन से लेकर जीवन के तूफ़ान तक एक ही संदेशा था और एक ही संदेशा लाने वाला अर्थात् एक ही आदि-शक्ति काम करती रही, कभी विनम्र होकर, कभी प्रचंड होकर।

बाग़बाँ ने आग दी जब आशियाने को मेरे।
जिन पै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे॥

—साक़िब, लखनवी

जब माली ने मेरे घोसले या नीड़ में आग लगाई तो जिन सूखे पत्तों पर विश्राम मिलता था वही उस आग को हवा देने लगे और भड़काने लगे। आपद काल में सुख देने वाली चीज़ें भी विनाश को सहायता देती हैं, खास कर आग लगने में काम की चीज़ें भी आग को भड़का ही देती हैं। 'वही पत्ते' का टुकड़ा कितना भावपूर्ण है! और 'हवा देने लगे' का टुकड़ा भी! 'जिन पर तकिया था' अर्थात् जिन पर अवलम्बन था या जिन पर शरीर को टेकते थे।

प्रेम की पीड़ा का अनुभव प्रेम को भी नहीं। शराब की तलछट खुद शराब से बहुत दूर खिंच गई। जिस ग़म को जान लिया वह भी कोई ग़म है ! इस विचार को मैंने यों भी प्रकट किया है—

वह कोई वारदात है जिसको कहें कि हो गयी ?
दर्द उसी का नाम है जो शबे ग़म उठा नहीं ॥

वह कोई दुर्घटना है जिसके बारे में यह कह सकें कि वह हो गई या घट गई ? जो दर्द नहीं उठ सका (अर्थात् जीवन की नित्य करुणा), सच पूछो तो वही दर्द है। और यों भी कहा है—

यही हुआ कि तेरे ग़मज़दों पै कुछ न हुआ।
जो आये लफ़्ज़ो बयाँ में वो वारदात नहीं ॥

अर्थात् यही हुआ कि तेरे दुःख उठाने वालों पर कुछ नहीं हुआ। उन पर कोई देखने सुनने वाली मुसीबत नहीं आई। जो दुर्घटना शब्द और वाक्य में आ जाय वह कोई दुर्घटना नहीं।

दिल ही तो है न संगो ख़िश्त, दर्द से भर न आये क्यों ?
रोयेंगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताये क्यों ॥

—ग़ालिब

दिल ही तो है, कोई पत्थर या मिट्टी के बर्तन का टूटा हुआ टुकड़ा नहीं है, दर्द से भर न आये क्यों ? हमें कोई क्यों सताये; रोयेंगे और हज़ार बार रोयेंगे। विवशता को इस तेवर के साथ बयान करना, दिल की नर्मी पर इतना घमंड करना शेर को कितना रोचक बना रहा है। 'कोई हमें सताये क्यों ?' के टुकड़े में 'कोई' का जो अर्थ चाहिए लगा लीजिए। संसार की घटनाएँ, जीवन की अग्नि-परीक्षा, ज़ालिम व्यक्ति, निर्दयी अन्यायकारी हुकूमत, बुरे रस्मो-रेवाज, प्रेम और सौंदर्य इनमें से कोई भी हमें सताये क्यों ? पूरी सभ्यता की आलोचना इन पंक्तियों में कर दी गई है। और 'दिल ही तो है' के टुकड़े की क्या तारीफ़ की जाय ! ऐसे ही टुकड़े कविता को जादू बना देते हैं। मनुष्य की ऐसी ही बानी पर देवबानी को रश्क आता है।

दैर नहीं, हरम नहीं, दर नहीं, आस्तां नहीं।
बैठे हैं रहगुज़र पै हम, कोई हमें उठाये क्यों ॥

—ग़ालिब

मन्दिर नहीं, काबा नहीं, किसी का द्वार नहीं, किसी की चौखट नहीं—हम तो रास्ते पर बैठे हुए हैं या राह के किनारे बैठे हुए हैं, हम यहाँ किसी का क्या लेते हैं—कोई हमें उठाये क्यों। ग़ालिब ने बोल-चाल और कविता, गद्य और पद्य के सिरे इन पंक्तियों में मिला दिये हैं।

ख़ोदा मालूम इस आग़ाज़ का अंजाम क्या होगा।
छिड़ा है साज़े हस्ती मुब्तदाये बेख़बर होकर ॥

—यगाना

अब इस शेर में शैली बिलकुल बदल गई! शायर कहता है ईश्वर जाने इस आदि का अन्त क्या होगा, इस आरम्भ का परिणाम क्या होगा? 'अस्तित्व का साज़' उस जुमले (वाक्य या कथन) की तरह छिड़ा है जिसका अन्त या नतीजा होता ही नहीं या जिसकी कोई ख़बर निकलती ही नहीं। जैसे कहें कि अब आसमान पर बिजलियाँ चमकीं··· और इसके बाद कुछ न कहें।

हवा चली और बन्द हुई, ख़ाक उड़ी और बैठ गई।
मंज़िल इनको कहाँ लाई, मंज़िल वाले क्या जानें ॥

जीवन-यात्रा, उसकी प्रेरणाएँ, उसकी मंज़िलें सब की सब रहस्य हैं। बस एक आन्तरिक प्रेरणा उठती ह, हवा चलने लगती है और कहीं पहुँच कर बन्द हो जाती है; ख़ाक उड़ती है और कहीं जाकर बैठ जाती है। अज्ञात मंज़िल हर वस्तु को, हर कण को, जीवन और संसार को, अपनी ओर खींचती है लेकिन इसकी ख़बर किसको? मंज़िल इनको कहाँ लाई, मंज़िल वाले क्या जानें।

इन्हीं विचारों से मिलता-जुलता असग़र ने क्या अच्छा शेर कहा है—

कोई महमिल नशीं क्यों शाद या नाशाद होता है।
.गुबारे .क़ैस .खुद उठता है, .खुद बर्बाद होता है ॥

—असग़र

महमिल में (अर्थात् पर्दों से ढँके हुए कजावे में) बैठने वाली लैला क्यों इस बात पर सुखी या दुखी होती है कि क़ैस यानी मजनू उठ कर आगे बढ़ा और फिर गिर पड़ा। क़ैस की मिट्टी तो किसी गुप्त प्रेरणा से स्वयं उठती है और स्वयं बरबाद हो जाती है।

झुटपुटा वक़्त है बहता हुआ दरिया ठहरा।
सुब्ह से शाम हुई, दिल न हमारा ठहरा ॥

ऊपर वाला शेर मशहूर उर्दू कवि आतश के एक शागिर्द का शेर है। झुटपुटे का वक़्त है, प्रकृति की हर वस्तु की गति मन्द पड़ गई है या ठहर गई है। तेज़ी से बहने वाला दरिया भी ठहरा। लेकिन कवि का या प्रेमी का दिल है कि सुबह से शाम हो गई और वह उसी तरह तड़प रहा है।

इश्क़ बुरे ही ख़याल पड़ा है, चैन गया, आराम गया।
दिल का चलना ठहर गया है, सुब्ह गया या शाम गया ॥

—मीर

महाकवि मीर ने अजब अन्दाज़ से यह शेर कहा है। इश्क़ का ध्यान कहाँ से आ गया जिसका नतीजा यह हुआ कि चैन गया, आराम गया। अब तो दिल की धड़कन भी स्तब्ध हो गई है। इस दिल के मर जाने में अब तब लगी हुई है—सुबह गया, या शाम गया।

कहाँ वह्मोगुमां इतने, हक़ायक़ हर तरफ़ जितने।
निगाहे नारेसा यह नक़्दे फ़ितरत रायगां क्यों हो ॥

—यगाना

दुनिया में इतने भ्रम और धोके कहाँ हैं जितने सत्य हर तरफ़ बिखरे पड़े हैं। ऐ दूर तक न पहुँच सकने वाली निगाह, सृष्टि या प्रकृति की

यह दौलत, उसके यह सच्चे सिक्के बर्बाद क्यों हो अर्थात् मनुष्य इन सत्यों को काम में क्यों न लाये !

ज़माना लाख गुम हो जाय आप अपने अँधेरे में।
कोई साहब-नज़र अपनी तरफ़ से बद्गुमां क्यों हो ॥

—यगाना

ज़माना लाख आप अपने अँधेरे में खो जाय लेकिन कोई आँख वाला इस विश्व-व्यापी भ्रम के अन्धकार के होते हुए भी सत्य के प्रति अपने दिल में शङ्का क्यों लाय !

ज़मीनों आस्मां हैं माद्दे की जोत से रौशन।
मगर रूहानियों की ज़ुल्मत अफ़शानी नहीं जाती ॥

—जोश, मलिहाबादी

यह धरती और आकाश प्रकृति या पंच-भूत की ज्योति से जगमगा रहे हैं लेकिन धर्माचारियों, मज़हब वालों और आध्यात्मिक लोगों की अन्धकार फैलाने वाली आदत या क्रिया नहीं छूटती। कवि ने यथार्थ-वाद या प्रकृतिवाद (Religion of Nature) को इन पंक्तियों में सराहा है। यह भौतिक संसार तो स्वतः सिद्ध सत्य की तरह चमक रहा है लेकिन अध्यात्मवादियों ने या आत्मा आत्मा करने वालों ने अन्धकार फैला रखा है।

अमीर जाते हो बुतख़ाने की ज़ेयारत को।
पड़ेगा राह में काबा, सलाम कर लेना ॥

—अमीर मीनाई

कितना भावपूर्ण शेर कहा है, कितनी दूर की बात कही है ! ऐ अमीर, तुम उन मन्दिरों की यात्रा पर जा रहे हो जिनमें मूर्तियाँ स्थापित हैं और जहाँ मुसलमान को नहीं जाना चाहिए। भई, राह में काबा पड़ेगा, सजदा नहीं तो कम से कम सलाम तो कर लेना। मुसलमानों के मत के अनुसार मन्दिरों का वह दर्जा नहीं है जो काबे का है लेकिन

कवि ने इन शेर में पासा पलट दिया है और कहा है कि काबा या मक्का तो बुतख़ाने की राह में पड़ता है ।

कितने काबे मिले रस्ते में कई तूर मिले ।
इन मोक़ामात से मुझको वो बहुत दूर मिले ॥

—रियाज़, ख़ैराबादी

काबा को भी मुसलमान ख़ोदा का घर मानते हैं और तूर पहाड़ पर भी हज़रत मूसा को ख़ोदा का जलवा नज़र आया था । लेकिन कवि कहता है कि यह दोनों कोई ईश्वर के घर नहीं हैं । न जाने कितने काबे और कितने तूर रास्ते में मिलते हैं । मुझे ईश्वर मिला, लेकिन इन स्थानों से बहुत दूर ।

किसी का कौन रहा यों तो उम्र भर,—फिर भी ।
ये हुस्नो इश्क़ तो धोका है सब, मगर—फिर भी ॥

—फ़िराक़

बस जो कुछ कहना था वह दोनों पंक्तियों के अन्त में 'फिर भी' कह कर कह दिया गया । यह माना कि उम्र भर कोई किसी का होकर नहीं रहता (We mortal millions live alone) । हुस्न और इश्क़ सब धोका सही ,'मगर—फिर भी ।'

हाली का शेर याद आ गया—

गो जवानी में थी कजराई बहुत ।
पर जवानी हमको याद आई बहुत ॥

यद्यपि जवानी में हमारी मत बहुत उल्टी थी और हम बार-बार बहक जाते थे, इस बात को अच्छी तरह समझते हुए भी बीती हुई जवानी हमको बहुत याद आई । वही बात हुई—"ये हुस्नो इश्क़ तो धोका है सब, मगर—फिर भी ।" यह शेर भी सुन लीजिए—

हज़ार बार इधर से ज़माना गुज़रा है ।
नई नई सी है कुछ तेरी रह गुज़र फिर भी ॥

—फ़िराक़

जिस राह से माशूक़ चलता है वह कुछ उसके लिए ही नहीं बनी है। हज़ार बार उधर से दुनिया गुज़रती है लेकिन जब जब माशूक़ के पाँव उस पर पड़ते हैं तो वह राह नई हो जाती है। रूपवान और रूपवती हर राह को नया बनाते हुए चलते हैं।

जहाँ हस्ती हुई महदूद लाखों पेच पड़ते हैं।
अक़ीदे, अक़्ल, अन्सर, सब के सब आपस में लड़ते हैं॥

—अकबर, इलाहाबादी

अस्तित्व जहाँ सीमित हुआ, लाखों पेच पड़ जाते हैं, अर्थात् अनगिनित उलझनें पैदा हो जाती हैं। विश्वास, बुद्धि, पञ्चभूत सब के सब आपस में लड़ने लगते हैं। सीमित और सान्त का सहारा, असीमित और अनन्त ही है।

फ़ल्सफ़ी को बहस के अन्दर ख़ोदा मिलता नहीं।
डोर को सुलझा रहा है और सिरा मिलता नहीं॥

—अकबर, इलाहाबादी

दार्शनिक को वाद-विवाद में पड़ कर ब्रह्म (सत्य) नहीं मिलता। संसार के डोर को दार्शनिक सुलझाता चला जा रहा है लेकिन उसका सिरा या छोर नहीं मिलता। आजकल के विज्ञान और दर्शन में, आधुनिक न्यायशास्त्र में, यद्यपि ईश्वर और परमात्मा के अस्तित्व का महत्व बिल्कुल कम कर दिया गया है लेकिन जड़वाद भी अनन्त और असीमित की कल्पना को बहुत महत्व देता है। विचार का प्रवाह सान्त के साथ सम्भव ही नहीं।

फ़ुग़ां कि मुझ ग़रीब को हयात का ये हुक्म है।
समझ हरेक राज़ को मगर फ़रेब खाये जा॥

—जोश, मलिहाबादी

दोहाई है कि मुझ दीन को जीवन का यह आदेश है कि हर भेद को समझ लेकिन धोका खाए जा। जोश की इस ग़ज़ल का मतला और एक और शेर सुनिए—

बिगाड़ कर बनाये जा, उभार कर मिटाये जा।
कि मैं तेरा चिराग़ हूँ, जलाये जा, बुझाये जा ॥

कितना साँचे में ढला हुआ शेर है। दूसरा शेर सुनिए—

हयाते रफ़्ता के क़दम की चाप सुन रहा हूँ मैं।
नदीम, अहदे शौक़ की कहानियाँ सुनाये जा ॥

बीते हुए जीवन की मैं पग-ध्वनि सुन रहा हूँ। ऐ मेरा भेद जानने वाले मित्र, मुहब्बत के ज़माने की कहानियाँ सुनाये जा। कवि को बस इतना कहना है कि मुहब्बत के ज़माने की कहानियाँ उसे बीते हुए जीवन की याद दिला रही हैं। लेकिन यह कह कर कि मैं बीते हुए जीवन की पग-ध्वनि सुन रहा हूँ उसने बात को कितना रोचक बना दिया है।

अन्त में मुझे अपने स्वर्गीय पिता जी का यह शेर याद आ गया—

क्या ढूँढती है बाग़ में मेरे तू ऐ ख़िज़ाँ।
तू जानती है सबके चमन में बहार है ॥

मैंने उर्दू के कई महाकवियों को यह शेर सुनाया। इन लोगों ने कहा कि इस शेर से बड़े शेर की कल्पना ही नहीं की जा सकती। कवि कहता है कि ऐ ख़िज़ाँ (पतझड़), तू मेरे बाग़ में क्या ढूँढ रही है ? तू समझती है कि सब के बाग़ में बहार है। भला उस बाग़ की वीरानी का कोई ठेकाना है जो पतझड़ से कहे कि तू समझती है कि सब के बाग़ में बहार ही बहार है। जैसे किसी की मौत आये और वह मृत्यु से यह कहे कि तू सब को जीवित ही समझती है। इस अनुभव में कितनी करुणा है ! ऐसे ही शेर को नश्तर कहा जाता है। अभी बाग़ में ख़िज़ाँ आई भी नहीं और बाग़ कहता है कि हम तो बे ख़िज़ाँ के उजड़ चुके—

"मैं पापिन ऐसी जली कोयला भई न राख।"

चौथी बातचीत

उर्दू की उन पंक्तियों में जो मैंने अब तक आपको सुनाई हैं भाव और विचार की सच्चाई और गहराई के साथ साथ आपने यह भी ज़रूर देखा होगा कि लगभग हर पंक्ति में भाषा कितनी सरल, सरस, स्वाभाविक और मँजी हुई है और उसमें कितनी रवानी है। आपने देखा होगा कि लगभग हर पंक्ति में ऐसा मालूम होता है कि हमारी बोली छन्द में ढल गई है। फ़ारसी टुकड़ों को देशी टुकड़ों से यों ही नहीं मिला दिया गया है बल्कि दूध और मिश्री की तरह मिलाया गया है। आपने यह भी देखा होगा कि अगर यह तमाम पंक्तियाँ आप एक जगह छपी हुई पायें तो उतने ही स्थान में, उतने ही शब्दों या पंक्तियों में फ़ारसी शब्द पचीस फ़ी सदी हैं तो हिन्दी शब्द पचहत्तर फ़ी सदी हैं और हर शेर का जानदार, सरल, सरस, संगीतमय और प्रभावशाली हिस्सा अधिकतर हिन्दी ही शब्दों से बना हुआ है। पंक्ति का चमत्कार और निखार गोया हिन्दी ही का चमत्कार और निखार है। भारतेन्दु-हरिश्चंद्र से लेकर अब तक की हिन्दी कविता में ऊपर लिखी हुई ख़ूबियाँ नहीं मिलतीं, कम से कम जहाँ तक हिन्दी शब्दों के व्यवहार और प्रयोग का सम्बन्ध है। उर्दू भाषा के रचने वाले फ़ारसी शब्द सावधानी से लाते हैं, यह नहीं कि मनमाने तौर पर जो फ़ारसी शब्द हुआ उसे घर-घसीटा। आज कल की हिन्दी कविता भद्दे और भोंडे तौर पर संस्कृत शब्दों को हर पंक्ति में ठूस देती है। इससे संस्कृत और हिन्दी का अपमान होता है। और अगर कहीं कहीं संस्कृत शब्द कम करके सीधी-सादी हिन्दी लिखी जाती है तो वह मुर्दा, बेजान, फुसफुसी और ढीली-ढाली होती है। मैंने एक बार अपने विश्वविद्यालय की हिन्दी-समिति के सामने यह सिद्धांत रखा था कि गद्य और पद्य में और जो कुछ भी अन्तर हो

लेकिन दोनों की रचना वाक्यों (sentences) से होती है। अतः गद्य या पद्य का सौन्दर्य उसके पृथक-पृथक वाक्यों, अलग अलग जुमलों की ख़ूबसूरती पर निर्भर है। हिन्दी गद्य पद्य और ख़ास कर हिन्दी पद्य में क्रियाएँ रचे हुए रूप से आती ही नहीं। "है" और "था" और "हुआ" और "गया" और ऐसे ही दस-पाँच क्रियाओं को हिन्दी पंक्तियों में चोर की तरह मुँह छिपाए हुए कहीं कहीं हम पाते हैं। क्रियाओं के कमज़ोर प्रयोग के अतिरिक्त अन्य शब्दों का क्रम भी गड़बड़ होता है जिससे वाक्य बिलकुल बेजान हो जाता है। उर्दू की इस पंक्ति को देखिए—

जब याद तेरी आती, आती ही चली जाती।

आती ही चली जाती या सुनाती ही चली जाती या दिखाती ही चली जाती यह टुकड़े क्रियाओं के प्रयोग के चमत्कृत दृष्टांत हैं।

देखूँ तेरी होठों पै हँसी आई हुई सी।

या यह मिसरा—

समझा हूँ महब्बत में अजल आई हुई सी।

या ग़ालिब की यह पूरी ग़ज़ल—

नुक्ताचीं है ग़मे दिल उसको सुनाये न बने।
क्या बने बात जहाँ बात बनाये न बने॥

मैं बुलाता तो हूँ उसको मगर ऐ जज़्बये दिल।
उस पै बन जाय कुछ ऐसी कि बिन आये न बने॥

खेल समझा है कहीं छोड़ न दे, भूल न जाय।
काश यों भी हो कि बिन मेरे सताये न बने॥

ग़ैर फिरता है लिये यों तेरे ख़त को कि अगर।
कोई पूछे कि ये क्या है तो छुपाये न बने॥

इस नज़ाकत का बुरा हो वो भले हैं तो क्या।
हाथ आयें तो उन्हें हाथ लगाये न बने॥

कह सके कौन कि ये जलवागरी किसकी है।
पर्दा छोड़ा है वो उसने कि उठाये न बने ॥
मौत की राह न देखूँ कि बिन आये न रहे।
तुम को चाहूँ कि न आओ तो बुलाये न बने ॥
बोझ वो सर से गिरा है कि उठाये न उठे।
काम वो आन पड़ा है कि बनाये न बने ॥
इश्क़ पर ज़ोर नहीं, है यह वो आतश ग़ालिब।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने ॥

या यह पंक्ति—

नींद आई जाती है हुस्न के फ़साने से।

या यह बिल्कुल सीधा-सादा वाक्य—

रात का वक़्त है, रह जाओ, कहाँ जाओगे।

या एक बिल्कुल मामूली कवि का यह शेर—

मंजिलें दूर हुई जाती हैं।
हिम्मतें चूर हुई जाती हैं ॥

या यह पंक्ति—

इधर ला हाथ, मुट्ठी खोल, यह चोरी यहीं निकली।

या यगाना का यह शेर—

किधर चला है इधर एक रात बसता जा।
गरजने वाले गरजता है क्या बरसता जा ॥

उर्दू कविता में हर वाक्य में तान क्रिया पर टूटती है और ऊपर दी हुई पंक्तियों में आप क्रिया के प्रयोग की रौशन और शानदार मिसालें देखेंगे। उपर्युक्त पंक्तियों को एक एक कर के फिर देखिए और उनमें सिर्फ़ क्रिया की लोच और क्रिया का चमत्कार देखिए। क्रिया भाषा की

रीढ़ की हड्डी है। यहाँ तक कि अगर हम यह कहें कि मौर्निंग ट्रेन (morning train) के मिस (miss) हो जाने से हम प्रिन्सिपल (principal) के ऑफ़िस (office) में कॉलेज ऐनिवर्सरी (college anniversary) के दिन जब गवर्नर (governer) का रिसेप्शन (reception) था एक घण्टा लेट (late) पहुँचे तो यह वाक्य, यद्यपि उसमें अँग्रेज़ी शब्दों की भरमार है, हिन्दी ही कहलायेगा। या यह कहें कि ताजमहल गिर पड़ा तो यह हिन्दी है। लेकिन अगर यह कहें कि ताजमहल फ़ेल डाउन (fell down) तो यह अँग्रेज़ी हो गई। जो आदमी अपनी भाषा में क्रियाओं के प्रयोग पर पूरा पूरा आधिपत्य नहीं रखता वह अपनी मातृभाषा जानता ही नहीं, मातृभाषा का लेखक होना और कवि होना तो दूर रहा। मैं तो जब आजकल की हिन्दी कविता देखता हूँ तो कई कवियों को हिन्दी लिखते हुए नहीं बल्कि झक मारते हुए पाता हूँ। संस्कृत शब्दों के भद्दे और भोंडे और बे ज़रूरत प्रयोग देख कर जी उदास हो जाता है। मुझे तो अधिकतर उनकी रचनाओं में अपनी मातृभाषा हिन्दी का ऐसा अपमान नज़र आता है कि तबीयत बदमज़ा हो जाती है। इससे तो सुखसागर के 'आते भए', 'उठते भए', और 'जाते भए' के वाक्य ही अच्छे। हिन्दी में हमारी भाषा और वाक्यों का ऐसा प्रयोग होता है कि गोया अपनी मातृभाषा को मुँह चिढ़ा रहे हैं! हिन्दी गीतों, हिन्दी बोली-ठोली, ब्रजभाषा की कविता, हिन्दी बोलने वाली जनता के जीवन, भावों और विचारों से ही उर्दू कवियों ने यह टुकड़े, यह शब्द और वचन, यह मुहावरे और कहावतें लेकर उर्दू को सजाया और रचाया। लेकिन आज कुछ बे अटकलों के हाथों हिन्दी की इन्हीं चीज़ों का ख़ून हो रहा है। मैं फिर एक बार यह कह कर चुप हो जाऊँगा कि जब आप हिन्दी की कोई कविता या हिन्दी गद्य का कोई टुकड़ा पढ़ें या सुनें तो गाने-बजाने और "हिन्दी प्रेम" के नशे से बच कर, अपने आप को झूमने से रोक कर और "सुन्दर", "बहुत सुन्दर" कहने की आकांक्षा का शिकार न होकर सिर्फ़ एक बात अगर देख

सकिये तो देखिये—वह यह कि उस गद्य या पद्य के पृथक पृथक वाक्य ख़ूबसूरत जुमले हैं या नहीं।

क्रियाओं के प्रयोग में हमारे हिन्दी कवि अभी कितने कमज़ोर हैं इसकी सिर्फ़ एक मिसाल लीजिए। दुनिया में बाढ़ आ चुकी है। इस जल-प्लावन में सारी दुनिया डूब चुकी है। सिर्फ़ एक आदमी मनु नाम का बचा है। कुछ दिनों के बाद पानी मरने लगा और ज़मीन कहीं कहीं से उभरने लगी। मनु की नाव एक बड़े वृक्ष से बँधी हुई थी, वहाँ का पानी सूख चुका था और किश्ती अब सूखे में पड़ी थी। इस दृश्य का वर्णन स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद जी 'कामायनी' में यों करते हैं—

बँधी महा-बट में नौका थी
सूखे में अब पड़ी रही,
उतर चला था वह जल-प्लावन,
और निकलने लगी मही।

इसका गद्य या इसका अन्वय यों हुआ। महा-बट से बँधी हुई नौका अब सूखे में पड़ी थी। दूसरी पंक्ति में 'रही' की क्रिया बिल्कुल ग़लत और बेज़रूरत है। वाक्य भी सुन्दर नहीं है। तीसरी पंक्ति अच्छी है लेकिन 'उतर चला था' की क्रिया के बाद चौथी पंक्ति में निकलने लगी थी या उभरने लगी थी कहना चाहिए। यही कमज़ोरियाँ कविता को ढीली-ढाली और फुसफुसी बना देती हैं।

आइये, अब आगे बढ़ें और उर्दू कवियों की ख़ूबसूरत पंक्तियों की कुछ और मिसालें देखें।

काबा सुनते हैं कि घर है बड़े दाता का रियाज़।
ज़िन्दगी है तो फ़क़ीरों का भी फेरा होगा॥

—रियाज़ ख़ैराबादी

आपने अक्सर कुछ मुसलमानों को गाते हुए सुना होगा—"मेरे

मौला बुला ले मदीने मुझे।" लेकिन मेरे मौला वाली पंक्ति में ख़ूब सूरती नहीं है। रियाज़ का भी घर भारतवर्ष ही है। वह भी काबा की यात्रा करने की आकांक्षा प्रकट करते हैं। लेकिन भाषा की सरलता और बयान की ख़ूबी देखिए। "सुनते हैं कि घर है बड़े दाता का रियाज़" कितना बेलाग और स्वाभाविक जुमला है। न इसकी गद्य हो सकती है न इसमें कोई फुसफुसापन है क्योंकि बंदिश की चुस्ती (ध्वनि का खिंचाव या तनाव) ज़बान को कहीं अटकने नहीं देती, न स्वर को ढीला होने देती है। हमारी बोली-ठोली इस पंक्ति में निखर आई है। दूसरी पंक्ति में "ज़िन्दगी है" (अर्थात् अगर जीते रहे) सरल और स्वाभाविक वाक्य और मुहावरे के प्रयोग की ऐसी मिसाल है जो कवि के वाक्य-कौशल और जादूबयानी का सबूत देती है। देखिये, 'ज़िन्दगी' फ़ारसी शब्द है और 'है' हिन्दी शब्द। दोनों जोड़ दिये गए हैं। लेकिन यहाँ अगर आप जीवन है कहिए तो भाषा असहनीय हद तक भद्दी हो जायगी और यही हाल होगा अगर ज़िन्दगी की जगह उसी अर्थ का दूसरा फ़ारसी शब्द 'हयात' 'है' के साथ जोड़ दिया जाय। 'ज़िन्दगी है' और सिर्फ़ 'ज़िन्दगी है' कहा जा सकता है। तो 'फ़क़ीरों का भी फेरा होगा' पंक्ति का टुकड़ा नहीं है बल्कि जादू है। यह भी देखिए कि तीर्थ-यात्रा की आकांक्षा और फ़क़ीराना शान या ज़रा सी लापरवाही को किस तरह एक ही स्वर में मिला दिया है। इस सिलसिले में 'भी' शब्द के ऊपर ज़रा सा ध्यान दीजिये। रियाज़ के शेर का वह मतलब ही नहीं है जो इस पंक्ति का मतलब है 'मेरे मौला बुला ले मदीने मुझे' क्योंकि 'बुला ले' का माने भारतवर्ष से हमेशा के लिए नाता टूट जाय लेकिन रेयाज़ कहता है ज़िन्दगी है तो फ़क़ीरों का भी फेरा होगा यानी हम हिन्दुस्तान में शान से फ़क़ीरी कर रहे हैं अगर मौज आ गई और ज़िन्दगी ने साथ दिया तो काबे की तरफ़ कभी फ़क़ीरों का भी फेरा हो जायगा। इस शेर को समझ कर पढ़िये तो मालूम हो जायगा कि शायर का दिल हिन्दुस्तान ही से अटका

हुआ है। मैं जब ऐसी हज़ारों पंक्तियाँ उर्दू गद्य-पद्य में देखता हूँ तो यह सोच कर तिलमिला उठता हूँ कि मैं हिन्दी में इसकी मिसालें कहाँ ढूँढ़ूँ। सरल और स्वाभाविक भाषा लिखना बड़ा मुश्किल काम है। अच्छा अब यह शेर सुनिये—

भरे हैं आँखों में आँसू उदास बैठे हो।
ये किस ग़रीब की तुर्बत के पास बैठे हो॥

—तअश्शुक लखनवी

शेर में कोई बड़ी जटिल और सूक्ष्म बात नहीं कही गई है लेकिन बयान की नर्मी, स्वर और ध्वनि, मृदुलता, संगीत यह सब देखिए। इसी ग़ज़ल का दूसरा शेर लीजिए—

वो अपने दर के फ़क़ीरों से पूछते भी नहीं।
कि तुम लगाये हुए किसकी आस बैठे हो॥

क्या शेर कहा है! तड़पना चाहिए तो तड़प भी नहीं सकते। इस शेर के लिए करुणा या दुःख के शब्द भी प्रयोग करने की हिम्मत नहीं होती। "पूछते भी नहीं"—बोलचाल के इस टुकड़े में कवि ने बिजलियाँ भर दी हैं या अमृत, या हलाहल, या सिर्फ़ आधी बूँद आँसू! देखो आपने हिन्दी शब्द 'भी' की शक्ति! मगर लिखने आवे तब न। इसी ग़ज़ल का एक और शेर है, सुनिए, जिसमें फ़ारसी की छींट ज़रा ज़्यादा है लेकिन कितना रचा हुआ है—

मुझी को नाज़ से देखा, जला जो परवाना।
तुम एक बज़्म में मर्दुमशनास बैठे हो॥

जब सभा में चिराग़ की जलती हुई लौ पर पतिंगा टूट कर गिरा और उसने जल कर अपनी जान दे दी तो वहाँ बहुत से आदमियों के होते हुए भी तुमने (माशूक ने) मुझी को नाज़ से देखा। इस सभा में बस एक तुम मर्दुमशनास बैठे हो यानी आदमी को परख सकते हो।

अगर पतिंगे का बलिदान कोई समझ सकता था और उसी तरह के बलिदान की आशा किसी से हो सकती थी तो मुझसे हो सकती थी। इसी से सब को छोड़ कर मुझे देखा। दूसरी पंक्ति में 'एक' के लफ़्ज़ पर बहुत ज़ोर देकर पढ़ना चाहिए। सभा में और भी लोग माशूक़ की तरह मर्दुमशनास होते तो पतिंगे के बलिदान के समय वह भी मुझी को देखते। मगर देखा सिर्फ़ तुमने—तुम एक बज़्म में मर्दुमशनास बैठे हो। माशूक़ एक ही मर्दुमशनास है। इसी विचार को यगाना ने भी किस शान से कहा है—

> बक़द्रे हौसला मिलती है दादे इश्क़ो हवस।
> मिज़ाजे हुस्न में क्या एतदाल होता है॥

माशूक़ की तरफ़ से सच्चे और झूठे प्रेमियों के अपने अपने हौसले के मुताबिक़ उसके साथ न्याय या व्यवहार होता है। हुस्न का मिज़ाज या सुभाव भी कितना ऊँचा तुला, कितना सिजिल है। न वह किसी को ज़्यादा देता है, न किसी को कम। इसी ग़ज़ल का एक और शेर याद आ गया—

> नई ज़मीन, नया आस्मां, नई दुनिया!
> अजीब शै ये तिलिस्मे ख़याल होता है॥

कल्पना का तिलिस्म भी अजीब चीज़ है! वो हमें क्या क्या दिखा देता है—नई ज़मीन, नया आस्मां, नई दुनिया। अँग्रेज़ी में जिसे exclamation या interjection कहते हैं अर्थात् जिस घटना या अनुभव में अचानक और आश्चर्य हो, ऐसे अवसर पर हमारी वाक्य-शैली बदल जाती है। जैसे किसी औरत को ताबड़तोड़ बच्चे होते चले जायँ तो कहेंगे कि बच्चे पर बच्चा! अजब औरत है! या किसी अद्भुत नगर को देख कर यों कहेंगे--गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ, दिन-रात धन की बारिश, न कोई बीमार, न कोई दुखी, अजब शहर है! ऊपर

वाले शेर में भी यही शैली अख़्तियार की गई है जिससे शेर में बोल-चाल की लतीफ़ चाशनी आ गई है और ज़ोर पैदा हो गया है।

अब फिर तअश्शुक के दो शेर और सुनिए—

शबे हिज्र थी और मैं रो रहा था।
कोई जागता था कोई सो रहा था॥

वियोग की रात है। प्रेमी रो रहा है। इस समय दुनिया में कहीं कहीं कुछ लोग जाग रहे हैं और कहीं कहीं कुछ लोग सो रहे हैं। अगर कहना हो कि हम क़रीब ग्यारह बजे रात को शहर में पहुँचे तो ग्यारह बजे न कह कर बोलचाल में यों कहते हैं कि हम जब पहुँचे तो शहर में कुछ लोग जाग रहे थे कुछ लोग सो रहे थे। वाक्य बोलचाल के सांचे में कितना ढला हुआ है। फ़ारसी शब्द नाममात्र को हैं। रात की नीरवता, कुछ लोगों का जागते रहना, कुछ लोगों का सो जाना कितना स्वाभाविक और भावपूर्ण चित्र है। मालूम होता है यह शेर रात्रि के शीतल वायु-मंडल में ठंडी सांस ले रहा है।

उफ़्तादा रहने दी थी ज़मी दिल की इसलिए।
उम्मीद थी कि आप यहाँ घर बनायेंगे॥

मैंने अपने दिल की ज़मीन इसलिए गिरी पड़ी अवस्था में रहने दी थी यानी उसे किसी तरह ऊँचा नहीं किया था कि शायद आप उसे फैली हुई देख कर वहाँ घर बना लें। मतलब यह है कि हम चाहते तो दिल की ज़मीन को चारदीवारियों से घेर लेते अर्थात् ज़िन्दगी से सैकड़ों दिलचस्पियाँ, हज़ारों चीज़ों से लगाव पैदा कर लेते इसलिए प्रेम या माशूक़ का मेरे दिल में स्थान पाना असंभव हो जाता। लेकिन मैंने उसे गिरी पड़ी और फैली हुई रखा क्योंकि "उम्मीद थी कि आप यहाँ घर बनायेंगे"। दूसरे मिसरे (पंक्ति) के मृदुल और साथ ही तीव्र करुण स्वर पर ध्यान दीजिए। 'उम्मीद थी' के टुकड़े में और पहली

पंक्ति में 'इसलिए' के सरल टुकड़े में कितनी करुणा है। 'ट्रैजेडी' वही है जो हृदय के रंगमंच पर होती है न कि बाहर की दुनिया में।

अमीर मीनाई चोटी के शायर थे मगर उनका बहुत कुछ कलाम बनावटी है। फिर भी वह उर्दू कवि थे। सैकड़ों शेर ऐसे कह गए हैं कि जिनकी सादगी क़यामत का असर रखती है। यह शेर सुनिए—

ज़ानू पर अमीर सर को रक्खे।
पहरों गुज़रे कि रो रहे हैं॥

उन्हीं का दूसरा शेर सुनिए—

फिर चलते चलते वादए वस्ल उसने कर लिया।
फिर उठ खड़ा हुआ वही रोग इन्तज़ार का॥

वादए वस्ल = मिलने का वादा। दूसरे मिसरे में इन्तज़ार के रोग का फिर उठ खड़ा होना ज़रा सोचिए तो किस वाक्य-कौशल का सबूत दे रहा है। 'उठ खड़ा होना' की जगह फिर वही रोग लग गया या पैदा हो गया इत्यादि कोई और वाक्य इतनी सच्ची तस्वीर एक सच्चे भाव की खींच ही नहीं सकता। यह शेर भी सुनिए—

चार झोंके जब चले ठंडे चमन याद आ गया।
सद आहें जब किसी ने लीं वतन याद आ गया॥

चमन = बाग़। वतन = देश या घर या जन्मभूमि। शेर एक नर्म नश्तर है जो दिल में उतरता जा रहा है और एक ही साथ जलन और ठंडक पैदा करता चला जा रहा है।

जब कहीं दो गज़ ज़मीं देखी खुदी, समझा मैं गोर।
जब नई दो चादरें देखीं कफ़न याद आ गया॥

कहा जाता है कि अमीर मीनाई ने अपनी ब्याहता लड़की के मरने पर निम्न-लिखित शेर कहा था। शेर है कि नश्तर है—

अब आया ध्यान ऐ जाने जहाँ, इस नामुरादी में।
कफ़न देना तुम्हें भूले थे हम असबाबे शादी में॥

यह शेर पढ़ कर या सुन कर आँसू रोकना असंभव है। पहले तो यह देखिए कि किस उमँड़ते हुए प्यार से कवि ने मरी हुई बेटी को संबोधित किया है, उसे जानेजहाँ कहा है, यानी संसार का प्राण। ब्याह के समय क्या-क्या सामान लड़की को नहीं दिया जाता लेकिन कवि ने जीवन की निःस्सारता या जीवन का परिणाम यह कह कर ज़ाहिर किया है कि कफ़न देना तुम्हें भूले थे हम असबाबे शादी में।

बाबू श्याममोहन लाल, 'जिगर' बरेलवी का यह शेर सुनिए—इसे 'जिगर' मुरादाबादी का शेर न समझिएगा—

तुम नहीं पास, कोई पास नहीं।
अब मुझे ज़िन्दगी की आस नहीं॥

इस शेर पर निस्तब्ध हो जाऊँ या इसकी व्याख्या करने बैठूँ। बयान में वह भोलापन है और बात इतनी स्वाभाविक और सरल है कि गहरे से गहरा शेर इसके सामने छिछला मालूम होता। इस ग़ज़ल के दो और शेर सुनिए—

सांस लेने में दर्द होता है।
अब हवा ज़िन्दगी की रास नहीं॥

सांस को ज़िन्दगी की हवा कहना क़यामत की जादू बयानी है। जीवन के वायु-मंडल को ज़िन्दगी की हवा कहा है। रास नहीं या रास नहीं आती या रास नहीं आता इत्यादि उस मौक़े पर कहते हैं जब कोई चीज़ किसी को नहीं फलती या नहीं सहती यानी बुरा नतीजा पैदा करती है।

उम्र सी उम्र हो गई बर्बाद।
दिले नादां अबस उदास नहीं॥

जब कोई चीज़ बहुत अच्छी या बहुत बुरी होती है यहाँ तक कि उसकी अच्छाई और बुराई पर ताज्जुब होने लगे तब इस तरह का टुकड़ा बोलते हैं। बहुत अच्छे या बहुत बुरे आदमी को कहते हैं—आदमी सा आदमी है! उसकी अच्छाई या बुराई का व्यक्त करना उस लबोलेहजे पर मोनहसर है जिस में हम आदमी के शब्द का उच्चारण करें। ग़ालिब कहता है—

कोई वीरानी सी वीरानी है।
दश्त को देख के घर याद आया॥

घर से घबरा कर जंगलों में भाग गये थे लेकिन निर्जन वन की वीरानी इतनी भयानक थी कि सब पागलपन भूल गये और इस वीरानी को देखते ही घर याद आया।

बाबू रंग बहादुर लाल, 'जिगर' गोरखपुरी का यह शेर सुनिए। इसे भी 'जिगर' मुरादाबादी का शेर न समझिएगा। यह शेर कोई बड़ा शेर नहीं है, मगर सुनिए—

खिले हैं ग़ुंचें जो रोई है रात भर शबनम।
हँसी नहीं है हसीनों का मुस्कुरा देना॥

आपकी आज्ञा से अब अपनी कुछ पंक्तियाँ निवेदन करता हूँ—

कुछ आदमी को भी मजबूरियाँ हैं दुनिया में।
अरे वो दर्दे मुहब्बत सही, तो क्या मर जाएँ॥

अब मैं इन पंक्तियों की व्याख्या क्या करूँ?

'फ़िराक़' बाद को मुमकिन है यह भी हो न सके।
अभी तो हँस भी ले, कुछ रो भी ले, वो आयें न आयें॥

इन्तज़ार की घड़ियाँ हैं। अभी माशूक़ के आने का वक्त है। आशा और निराशा में खींचातानी हो रही है। अभी तो यह संभव है कि ख़ुश हो लें या उदास हो लें, कुछ हँस लें, कुछ रो लें। लेकिन

जब यह वक्त गुज़र जायगा तो उस समय माशूक़ आ चुका होगा या यह निश्चय हो जायगा कि वह न आएगा। उस समय यह कहा नहीं जा सकता कि हँसना या रोना संभव होगा या नहीं। अगर माशूक़ आ चुका है तो भी प्रेमी की वह अवस्था हो सकती है जो न उसे रोने दे, न हँसने दे और अगर न आना निश्चय हो चुका है तो भी यही अवस्था हो सकती है—यानी साँस रुक कर रह जाय, जीवन की गति अचानक ठहर जाय। उस समय रोना-हँसना कैसा ! इसलिए ऐ प्रेमी, यह दोनों लीलाएँ इन्तज़ार की घड़ियों में, दुविधा की दशा में, हो लेने दे।

अज़ीज़ लखनवी के यह शेर सुनिए—

दिल का छाला फूटा होता।
काश ये तारा टूटा होता॥
शीशये दिल को यों न उठाओ।
देखो हाथ से छूटा होता॥

इन दोनों शेर में फ़ारसी शब्द इसी तरह आये हैं जैसे अच्छे शरबत में दो-चार बूँद केवड़ा डाल दिया जाय। मौलवियों और पण्डितों की भाषा से वह कविता नहीं बनेगी जो मातृभाषा की कविता कही जाय। यही नहीं कि सरल और ठेठ भाषा में मिठास और सरलता और संगीत होते हैं, उनमें जो भाव की गहराई और प्रबल विचारशक्ति और विचार की सूक्ष्मता, कल्पना का जो चमत्कार है वह पांडित्यपूर्ण शैली में पैदा हो ही नहीं सकता। हिन्दी में मैं चाहता हूँ कि संस्कृत की उतनी ही चाशनी हो जितनी कम चाशनी उपर्युक्त पंक्तियों में फ़ारसी की है। अज़ीज़ लखनवी का यह नीचे लिखा हुआ शेर भी देखिये—

शामे फ़िराक़ ज़िक्रे जवानी में कट गयी।
क्या रात थी कि एक कहानी में कट गयी॥

शामे फ़िराक़=वियोग की संध्या। सच बताइयेगा कि इन पंक्तियों में जितनी रची हुई हिन्दी लिखी गयी है, कविने ने जिस तरह

हमारी मातृभाषा को सँवार दिया है इसकी मिसाल हम हिन्दी में कहाँ ढूँढें।

एक अपना शेर भी याद आ गया—

अब दौरे आस्मा है न दौरे हयात है।
ऐ दर्दे हिज्र, तू ही बता कितनी रात है॥

एक बहुत मामूली शायर का यह शेर सुनिए। उर्दू साहित्य ने अपने जन्म दिन ही से भाषा को इस तरह साँचे में ढाला है कि बहुत अवसरों पर बिल्कुल मामूली शायरों के क़लम से शेर इस तरह निकल गये हैं जैसे कमान से तीर—

जो कुछ कि गुज़रना हो यहीं क्यों न गुज़र जाय।
कौन उठ के तेरे दर से इधर जाय, उधर जाय॥

प्रेम की परीक्षा में जो कुछ प्रेमी पर बीतना हो वह यहीं तेरे सामने ही क्यों न बीत जाय, कौन उठ के तेरे द्वार से "इधर जाय उधर जाय", मारा-मारा फिरे। इन भावों में एक कड़वापन ज़रूर है, ज़हर है, विष है, लेकिन अगर यह विष कोई पीता गया और सहन करता गया तो वह अमृत भी पी लेगा जो विष का सत है या तत्व है। विष और अमृत दो चीज़ें नहीं हैं। अमृत ही कच्चा रह कर विष हो जाता है और विष ही अपनी पराकाष्ठा को पहुँच कर अमृत बन जाता है। जैसे पारे का कच्चा कुश्ता (भस्म) और पक्का कुश्ता। जभी तो शेक्सपियर ने कहा है कि "Ripeness is all", पकना ही सब कुछ है, इसी को सिद्धि कहते हैं—

जो ज़हरे हलाहल है, अमृत भी वही लेकिन।
मालूम नहीं तुझको, अंदाज़ हैं पीने के॥

—फ़िराक़

मुझे उर्दू कविता से अगर कोई शिकायत है तो यह है कि वह

जीवन के रस को ज़हर से अमृत बनाने में बहुत कम सफल हुई है। शायद हिन्दू सभ्यता और संस्कृति को इसमें अधिक सफलता हुई है। लेकिन उर्दू के कवि उस विष को ढालने और पीने का सलीक़ा तो रखते हैं और हम तो अपने फूहड़पन से अमृत को भी गन्दा करके ढालते हैं और पीते हैं। हमें पीना तो अमृत चाहिए लेकिन पीने का तरीक़ा और सलीक़ा मुसलमान उर्दू कवियों से सीखना चाहिए।

आ, कि तुझ बिन इस तरह ऐ दोस्त घबराता हूँ मैं।
जैसे हर शै में किसी शै की कमी पाता हूँ मैं॥

—जिगर, मुरादाबादी

इस शेर में भी तेखापन और कड़ुवापन है। प्रिया को बुलाया है ये कह कर कि तुझ बिन मैं घबराता हूँ जैसे हर वस्तु में किसी वस्तु की कमी पाता हूँ। मगर इस मंज़िल से गुज़रे बग़ैर शान्ति की मंज़िल तक हम पहुँच भी कैसे सकते हैं?

हाँ, तो मैं आज ज़्यादातर इसी बात की मिसालें दे रहा था कि उर्दू कविता में अधिकतर भाषा कितनी सहल, स्वाभाविक, सरस, रोचक और संगीतपूर्ण होती है। उर्दू कवि हिन्दी की चिन्दी करते हैं तब जाके मातृ-भाषा चमक उठती है और बिना ऐसा किये हिन्दी का भविष्य संतोष-जनक नहीं हो सकता। अगर संस्कृत से जकड़ी हुई हिन्दी भाषा दस-पाँच फ़ी सदी हिन्दुओं में चल भी गयी और एक दिखावटी धूमधाम हिन्दी प्रचार संबंध में पैदा भी हो गयी तो यह हिन्दी का दुर्भाग्य होगा, सौभाग्य न होगा। यह पूरे हिन्दू जाति के साहित्यिक जीवन को अस्वा-भाविक कर देगा। अच्छा, अब दो शेर और सुना कर यह बातचीत मैं आज ख़त्म करता हूँ। अपने पिताजी का एक शेर सुनाता हूँ—

ज़माने के हाथों से चारा नहीं है।
ज़माना हमारा तुम्हारा नहीं है॥

कितनी बड़ी बात किस सहज रूप से कह दी गयी है। अरबी भाषा में काव्य-शास्त्र पर एक लेखक ने कहा है कि कविता वह है जिसे सुनकर गँवार भी कह उठे कि ऐसा तो मैं भी कह सकता हूँ लेकिन जब कहना पड़े तो बड़े बड़ों के दाँतों पसीना आ जाय। ऊपर लिखे हुए शेर की भाषा में कोई छन्द लिखने की कोशिश करके देख लीजिए। दूसरा शेर फ़ानी बदायूनी का है जिनका देहान्त हाल में हुआ है—

बिजलियाँ टूट पड़ीं जब वह मुक़ाबिल से उठा।
मिल के पलटी थीं निगाहें कि धुआँ दिल से उठा॥

बस आज इतना ही। जो कुछ मैंने आज कहा है उसका निचोड़ यही है कि हिन्दी साहित्य की रचना पण्डितों के द्वारा नहीं हो सकती। जब तक उर्दू साहित्य को घोल कर हमारे हिन्दी लेखक और पाठक पी न जायेंगे जब तब उनकी रग-रग में, उनके दिल में और जीभ में उर्दू साहित्य का कम से कम वह हिस्सा बस न जायगा जिसमें हमारी देशी बोली की हज़ारों लाखों रौशन मिसालें मिलती हैं, जब तक उर्दू से वह हिस्सा छीन न लेंगे जो हिन्दी है उस समय तक हम सजीव और जीवित रहने वाले हिन्दी साहित्य की रचना नहीं कर सकते। हमारी हिन्दी ही से मुसलमान उर्दू कवियों ने अपना दामन भरा था और आज फिर हमें ज़रूरत है कि हम उनसे कहें कि हमारी हिन्दी हमको दे दो।

पाँचवीं बातचीत

मैंने पिछली बार कविता की भाषा के संबंध में आज की हिन्दी कविता की कुछ कमज़ोरियाँ बतायी थीं। कहीं कहीं मैंने तीखी बातें भी कह दी थीं। इसमें हिन्दी के हित चाहने वालों को बुरा मानने की कोई बात न थी। मैं आजकल के हिन्दी के लगभग सब सुलेखकों को अच्छी तरह जानता हूँ। वह मेरे मित्र हैं और उनके लिए प्यार और इज़्ज़त के भाव मेरे दिल में है। हिन्दी साहित्य में भाषा-संबन्धी बातें जो इनसे हुईं तो मुझे अनुभव हुवा कि अर्धज्ञात रूप से हिन्दी लेखक अब चौंक रहे हैं और भाषा को सरल और स्वाभाविक बनाने के लिए उसमें चुस्ती, रवानी (बहाव) और निखार पैदा करने की ओर इनका ध्यान जा रहा है। मैं जानता हूँ कि सरलता और सहज शैली का निबाहना कठिन है। मैं यह भी कहता हूँ कि पन्द्रह-बीस सुलेखकों में इक्का-दुक्का लेखक अगर संस्कृत की भरमार अपनी कविता में करें और अन्य लेखक भी सैकड़ों पंक्तियों में कहीं कहीं यदि संस्कृत की भरमार कर बैठें तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन बस कहीं कहीं। भाषा और साहित्य की मुख्य धारा में संस्कृत इतनी ही होना चाहिए जैसे बहती हुई गंगा में इन्द्र-धनुष का प्रतिबिंब या इक्का-दुका तारों का अक्स। उर्दू कविता और उर्दू गद्य के अध्ययन से हिन्दी को इस काम के लिए बड़ा सहारा और बड़ा ख़ज़ाना मिल जायगा। उर्दू कविता में पूरी कविता पर नज़र नहीं डाली जाती, एक एक पंक्ति को परखा जाता है। उर्दू कवि मानो कविता की रचना नहीं करता है, पंक्तियों की रचना करता है। जब उसकी एक कविता या एक रचना ही सात-आठ शब्दों से लेकर हद से हद तीस-पैंतीस शब्दों की पंक्ति में होकर ख़त्म हो जाती है तो उसे फूँक फूँक कर क़दम रखना अनिवार्य हो जाता है और अधिकतर उसकी रचना में कहीं कहीं

नहीं बल्कि हर पंक्ति में हिन्दी के लपेट से लालित्य पैदा करना ज़रूरी हो जाता है। उर्दू कविता के बहुत बड़े हिस्से में यह बात मिलेगी कि पहली पंक्ति में आम तौर से फ़ारसी शब्द कुछ अधिक आ जाते हैं लेकिन दूसरी पंक्ति में ख़ूबसूरत फ़ौवारे की तरह तद्भव शब्द वायु-मंडल में नृत्य करते हुए दिखाई पड़ेंगे; पहली पंक्तियों में तो संध्या-कालिमा या धुँधलका नज़र आयेंगे, दूसरी पंक्ति में तारे छटक आयेंगे।

हाँ, तो अब आपको मैं कुछ शेर सुनाऊँ। अब से चालीस-पचास बरस पहले तक हिन्दुस्तान भर में अमीर और दाग़ की शायरी के डंके पिटे हुए थे। आज भी कुछ दक़ियानूसी लोग अमीर और दाग़ के रंग पर मिटे हुए हैं और उसी रंग को बिगाड़ कर चिकनफ़ुसेट क़िस्म की शायरी करते हैं जिसे वे ख़ुद ही गुनगुनाते हैं और जिस पर वे ख़ुद ही मगन होते हैं। उसी ज़माने में, जब कुएँ में भंग पड़ी थी, आसी, ग़ाज़ीपुरी, हाली, पानीपती, शाद, अज़ीमाबादी और इनके उच्च स्थान से कुछ ही नीचे मेरे पिता उर्दू ग़ज़ल में एक ख़ामोश इन्क़लाब पैदा कर रहे थे मगर इनके स्वर्गीय संगीत को सुन कर भी लोग अनसुना कर देते थे। अभी इक़बाल, चकबस्त और अकबर की आवाज़ें हिन्दु-स्तान के वायु-मंडल में नहीं गूँजी थीं और न जोश मलीहाबादी की आवाज़। आज हम आपको शाद, हाली, आसी और अपने पिता जनाब इबरत, गोरखपुरी के कुछ शेर पहले सुनायेंगे। इनकी आवाज़ें उठी तो थीं पचास बरस पहले लेकिन गूँजी पचास बरस बाद। शाद, अज़ीमाबादी के यह शेर सुनिए (अज़ीमाबाद पटने का दूसरा नाम है)।

अपनी हस्ती को ग़मो रंजो मुसीबत समझो।
मौत की क़ैद लगा दी है, ग़नीमत समझो॥

'मौत की क़ैद लगा दी है' में कर्ता का नाम न लेना, यानी यह न कहना कि प्रकृति ने या ईश्वर ने, वाक्य-कौशल की अनुपम मिसाल

है। लेकिन हम स्वर्गीय शाद, अज़ीमाबादी के विचार से सहमत नहीं। ज़िन्दगी या हस्ती को ग़मो रंजो मुसीबत समझना ग़लत सामाजिक व्यवस्था के कारण है, नहीं तो इस जीवन से बढ़ कर न कोई जीवन है, न इस दुनिया की मौत से बढ़ कर कोई मौत है। मगर कवि के वाक्य-कौशल के सामने उसके विचार से असहमत होते हुए भी सिर झुकाना पड़ता है।

शाद, अज़ीमाबादी का यह शेर भी सुनिए। जब मैं बच्चा था तो मैंने एक घटना या दुर्घटना सुनी। पचासों आदमी मौजूद थे। उनमें से एक ने कहा कि फ़लाँ गाँव में एक व्यक्ति एक बड़ा सुन्दर आम का फल, जो कुछ लाल भी था और कुछ सुनहरा भी था, ऐसे स्थान पर लेकर आया जहाँ कुछ बढई काम कर रहे थे। वहाँ उसका एक मित्र भी था। उसने इस लाल और सुनहरे (सिंदुरिये) आम को देख कर कहा—ज़रा इसे हम भी सूँघें। इस आदमी ने उसे आम दे दिया। उन्होंने झट से आम की ढेंपी तोड़ी और सूँघने के बदले उसे चूसने लगे। जो शख़्स वह आम लाया था उसने फ़ौरन बसूला उठाया और अपने इस दोस्त की (जो उसका बीस बरस का दोस्त था) गर्दन उड़ा दी। इसका बड़ा सनसनीख़ेज़ मुक़द्दमा हुआ था। क़ानून में इस क़िस्म के क़त्ल के सही या ग़लत होने पर कोई रौशनी डाली ही नहीं गई थी, न कोई दफ़ा क़ायम किया गया था। जज को यह फ़ैसला करना मुश्किल हो गया कि इस क़िस्म के आघात को Sudden provocation समझा जाय या नहीं। मैं यह तो भूल गया कि अदालत से उसको क्या सज़ा हुई—फाँसी या कालापानी। लेकिन इतना अब तक याद है कि उन पचासों आदमियों ने जिन्होंने यह घटना सुनी, सब तो उसकी तरफ़ थे जिसने सूँघने के बहाने वह ख़ूबसूरत सुनहरा आम खा लिया था, और अकेला मैं उस आदमी की तरफ़ था जिसने उसकी गर्दन उड़ा दी थी। मेरी प्रतिक्रिया (reaction) और विचार के समर्थन में शाद, अज़ीमाबादी का यह शेर सुनिए—

क्यों बाग़बां ने फूल दिया मुझको तोड़ कर।
नाहक़ लगी लगाई तबीयत उचट गई॥

जब तक फूल डालियों पर थे कितने भले मालूम होते थे, उनका तोड़ना एक जादू का टूट जाना है। इसी ओर कवि ने यह कह कर संकेत किया है। मगर वाह री कविता और उसका जादू! शेख़ अली हज़ीं का यह फ़ारसी शेर भी सुनिए जिसमें फूल के तोड़ने ही से फूल का सौंदर्य चमक उठा है—

ज़ग़ारते चमनत् बर बहार मिन्नत हा।
कि गुल बदस्ते तू अज़शाख़ ताज़ातर मानद॥

तूने चमन को लूट लिया तो चमन पर एहसान किया क्योंकि फूल तेरे हाथ में उससे भी ताज़ा मालूम होता है जितना वह शाख़ पर था। शाख़ से टूट कर तेरे हाथ में आकर वह और भी खिल उठा। इस फ़ारसी शेर की रंगीनी का क्या कहना! लेकिन शाद के शेर में जो सूक्ष्म मर्म है, जो नाज़ुक बात कही गई है वह अपनी जगह लाजवाब है—"नाहक़ लगी लगाई तबीयत उचट गई।" क्या मिसरा है! शाद ही के ये शेर सुनिए—

बढ़े जाते हैं दुख यह उम्र ज्यों ज्यों कटती जाती है।
मगर मैं सोच कर ख़ुश हूँ कि बेड़ी कटती जाती है॥

मैं इस शेर का मतलब बयान न करूँगा सिर्फ़ यह कहूँगा कि ऐसी भाषा के सामने ख़ास कर "बेड़ी कटती जाती है" का टुकड़ा सुन कर आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा नज़र से गिर जाती है।

फ़ुर्सत कहाँ ये दिल को जो यकसू रखे मिज़ाज।
कमबख़्त के सुपुर्द बहुत काम काज है॥
ऐ शाद, यों हसद् से कोई कुछ कहे मगर।
जो बात तूने की मेरे दिल में उतर गई॥

मैल आ जाय शराफ़त पै हज़ार ।
जब कसौटी पै कसो सोना है ॥

नई हिन्दी शायरी में ऐसी साफ़-सुथरी और रची हुई खड़ी बोली हमें क्यों नहीं मिलती ?

अब हाली, पानीपति के कुछ शेर सुनिए—

वस्ल के हो हो के सामाँ रह गये ।
मेह न बरसा और घटा छाई बहुत ॥

मैंने पिछले पचास बरसों की हिन्दी कविता को छान मारा है, इतना स्वाभाविक वाक्य किसी के वहाँ नहीं पाया कि जब किसी चीज़ का सामान हो हो कर रह जाय या जब किसी घटना के होने की पूरी तैयारी होकर भी वह चीज़ न मिले और वह घटना न घटे तो ऐसे अवसर पर कवि बोल उठे कि 'मेह न बरसा और घटा छाई बहुत ।' (यहाँ मेह में 'ए' की मात्रा उसी तरह पढ़ना चाहिए जैसे केदारनाथ मिश्र में, खेलवाड़ में या केवाड़ में 'ए' की मात्रा) और 'हो हो के सामा रह गये' का टुकड़ा भी कितना सुन्दर है !

ज़र्रा ज़र्रा है मज़हरे ख़ुर्शीद ।
जाग ऐ आँख, दिन है, रात नहीं ॥

इस शेर की दूसरी पंक्ति की सादगी देखने की चीज़ है। सीधी-सादी बातों में ज़ोर यों पैदा किया जाता है। ऐसी ही पंक्तियों से मातृ-भाषा का सम्मान बढ़ता है। उखड़े-पतंग की तरह संस्कृत शब्दों को कविता में कच्चे धागे से उड़ाना यानी निर्जीव और भोंड़े तौर पर लाये हुए तद्भव शब्दों से संस्कृत शब्दों का मिलाना मातृभाषा का सम्मान नहीं बढ़ा सकता। ऐसी बेल मँढे नहीं चढ़ेगी।

दिखाना पड़ेगा मुझे ज़ख़्मे दिल ।
अगर तीर उसका ख़ता हो गया ॥

यानी माशूक़ ने मेरे दिल का निशाना बाँध के तीर चलाया। देखने में तो तीर ख़ता हो गया और निशाने पर नहीं पड़ा। लेकिन उसकी इस आड़ी-तिरछी तीर अन्दाज़ी में वह भोली और मन लुभा लेने वाली अदा थी कि मेरा दिल घायल हो गया। उसी घायल दिल को दिखा कर मैं माशूक़ का दिल बढ़ाऊँगा और यह साबित कर दूँगा कि निशाने से अलग पड़ कर भी तीर निशाने ही पर पड़ा।

खेतों को दे लो पानी अब बह रही है गंगा।
कुछ कर लो नौजवानो, उठती जवानियां हैं॥

अब आसी, ग़ाज़ीपुरी के कुछ शेर सुनिए। उनके कुछ शेर आपको पहले भी सुना चुका हूँ।

इश्क़ कहता है दो आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है॥

कितना बड़ा शेर किस सादगी से कहा है? फिर कहते हैं—

मेरे दुश्मन को न मुझ पर कभी क़ाबू देना।
तुमने मुँह फेर लिया आह यही क्या कम है॥

दूसरे मिसरे की सादगी देखिए। एक फ़ारसी शब्द नहीं आने पाया है। फिर सुनिए—

पुकारा उसने अपना नाम लेकर रात आसी को।
नहीं अब कुछ भी ग़ैरीयत महब्बत हो तो ऐसी हो॥

अहं ब्रह्म या तत्वं असि की सीमा तक पहुँच कर कल्पना ने पलटा खाया है। अब सौन्दर्य या आदि सत्य कवि या प्रेमी को अपना नाम लेकर पुकारता है। प्रेमरस और भक्तिरस और विशिष्ट अद्वैतवाद के सूक्ष्म रहस्य बातों बातों में कवि ने व्यक्त कर दिया है। अब शुद्ध अद्वैत-वाद का यह शेर सुनिए। यह भी आसी का शेर है—

इन्हीं कानों से अनलहक़ के सुने हैं नारे।
इश्क़ में आदमी क्या जानिए, क्या होता है॥

अनलहक़=अहं ब्रह्म। नारे=नाद

अब अपने पिता इबरत, गोरखपुरी के कुछ शेर सुनाता हूँ; पहले भी कुछ सुना चुका हूँ—

वो दिल है मेरा हो नहीं सकता जो शगुफ़्ता।
वह बाग़ मेरा है जो हरा हो नहीं सकता॥
आराम किसे देती है अय्याम की गर्दिश।
सीधा कोई हलचल में खड़ा हो नहीं सकता॥

अय्याम की गर्दिश=ज़माने की गर्दिश या कालचक्र। जो कुछ हलचल है कालचक्र से है और हलचल में कोई सीधा खड़ा नहीं हो सकता।

इसी मज़मून की एक रुबाई किसी कवि ने कही है—

ग़म के दरिया की थाह मिलती ही नहीं।
दुनिया में कहीं पनाह मिलती ही नहीं॥
आगे बढ़ना बहुत ही मुश्किल है यहाँ।
पीछे हटने की राह मिलती ही नहीं॥

यह रुबाई मेरे पिता जी के शेर से बहुत बढ़ गई है। ग़म, दरिया, दुनिया, पनाह के शब्दों के होते हुए भी मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि हिन्दी इसे कहते हैं। आचार्य द्विवेदी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और श्री पद्मसिंह शर्मा और श्री बालमुकुन्द गुप्त और मुन्शी प्रेमचन्द ऐसी ही भाषा पसन्द करते थे। सूर, तुलसी और कबीर भी इस रुबाई को सुनते तो झूम जाते। हिन्दी के नये कवि यही शैली अख़्तियार करें।

अब कुछ शेर और सुनिए और सरल, सरस, स्वाभाविक शैली का आनन्द उठाइये—

भर दी हैं क्या अदायें उस शोख सीमतन में।
इक टेढ़ सादगी में इक सीध बांकपन में॥

—दाग़

तमन्नाओं में उलझाया गया हूँ।
खेलौने दे के फुसलाया गया हूँ॥

—शाद, अज़ीमाबादी

बलन्दी हो तो खुले तुझ पै ज़ोर पस्ती का।
बड़े बड़ों के क़दम डगमगाये हैं क्या क्या॥

—यगाना

हुस्न का ज़ोरेतलब है कि भरी महफ़िल में।
हम को छीने लिये जाता है हमीं से कोई॥

—शौक़ क़िदवई

दो-एक शेर अपने भी देता हूँ—

रमूज़े उज्र जफ़ा तक ख़याल जा न सका।
मैं चुप रहा तो बुरा मानने की बात नहीं॥

इस शेर की पहली पंक्ति का प्रथम अर्ध भाग जटिल भाषा में है। मुझे इसका अफ़सोस है। जी चाहता है कि इस शेर का मतलब भी आपको समझा दूँ। माशूक़ से आशिक़ ने शिकायत की है कि तुमने अपनी निष्ठुरता, अपने कटु वचनों और अपनी निर्दयता के लिए कभी कुछ अफ़सोस ज़ाहिर नहीं किया और मेरे दिल के ज़ख़्म पर मरहम न रखा। माशूक़ ने बीसों ऐसे अवसरों का ज़िक्र किया जब उसने कभी कुछ खुले तौर पर कभी गुप्त रूप से अनेक संकेतों के साथ अपना पछतावा ज़ाहिर किया और आशिक़ को सांत्वना देना चाहा लेकिन आशिक़ ने न जाने क्यों इन बातों और इन चेष्टाओं की क़द्र न की और वह गुमसुम सा रहा। माशूक़ ने अपने जवाब से पासा पलट दिया--इलज़ाम आशिक़ पर आ गया। अब आशिक़ रुद्धकंठ से जवाब

देता है कि मुझे इस सौभाग्य की आशा ही न थी। मेरे विचार माशूक़ की तरफ़ से क्षमा-प्रार्थना के रहस्यों तक जा ही न सके। पहली पंक्ति का यही अर्थ है। दूसरी पंक्ति में यह कह कर माशूक़ को मनाया कि ऐसी परिस्थिति में अगर मैं गुमसुम सा रहा और अगर मैंने कृतज्ञता प्रकट न की तो तुम्हें बुरा न मानना चाहिए। मैं चुप रहा तो बुरा मानने की बात नहीं।

हयाते इश्क़ की एक थरथरी बक़ा व दवाम।
ये ज़िन्दगी नहीं दो दिन की ज़िन्दगी के लिए॥

कहा जाता है कि ज़िन्दगी दो दिन की है। इस शेर में इसके ख़िलाफ़ बात कही गई है। पहली पंक्ति का अर्थ है कि अमरत्व क्या है? वह प्रेम के जीवन की एक थरथरी मात्र है यानी केवल एक अल्प-कम्पन है। दूसरी पंक्ति का अर्थ साफ़ है। जब एक-एक साँस में अमरत्व है तो यह क्यों कहें कि यह ज़िन्दगी दो दिन की ज़िन्दगी है।

चुप हो गये तेरे रोने वाले।
दुनिया का ख़याल आ गया है॥

शाम भी थी धुआँ धुआँ, हुस्न भी था उदास उदास।
दिल को कई कहानियाँ याद सी आके रह गईं॥

न यह ठंडक, न यह नर्मी, न ऐसी जगमाहट है।
दिये की लौ को तेरे मुस्कुरा देने से क्या निस्बत॥

वो रंगे रुख़ था, उठाई है जब निगाह उसने।
शराब जैसे छलकते छलकते रह जाये॥

संगो आहन बेनेयाज़े ग़म नहीं।
देख हर दीवारोदर से सर न मार॥

अर्थात् पत्थर की दीवार को और लोहे के दरवाज़े को अपने निज के ग़म हैं उनके अन्दर एक अव्यक्त दुःख छिपा हुआ है। हर दरो दीवार से सर न टकरा। उनके अन्दर ख़ुद एक चोट है।

हज़ारों शेर उर्दू में ऐसे भी हैं जिनमें आदि से अन्त तक दोनों पंक्तियों में हिन्दी होती है। जैसे—

कोस कड़े थे चाह के धूप में तेवर आ गये।
हम यही सोचते रहे छाँव मिले तो बैठ जाँय॥

—आरज़ू

थमते थमते थमेंगे आँसू।
रोना है यह कुछ हँसी नहीं है॥

—मीर

न कुछ हम हँस के सीखे हैं न कुछ हम रो के सीखे हैं।
जो कुछ थोड़ा सा सीखे हैं तुम्हारे हो के सीखे हैं॥

—मुग़ल सम्राट बहादुरशाह ज़फ़र

अब सीधे-सादे कुछ और शेर सुनिए। इनमें भी एक आध हल्के फ़ारसी शब्द आ गए हैं।

कब वो सुनता है कहानी मेरी।
और फिर वह भी ज़बानी मेरी॥

—ग़ालिब

ज़माने के हाथों से चारा नहीं है।
ज़माना हमारा तुम्हारा नहीं है॥
कोई आँसू पोछने वाला नहीं।
हमने फैलायीं निगाहें चार सू॥
बोलता है जब पपीपा 'पी कहाँ'।
ऐ ख़ोदा तब याद आ जाता है तू॥

—इबरत, गोरखपुरी

एक मशहूर उर्दू कविता की कुछ पंक्तियाँ अब मैं आपको सुनाना चाहता हूँ। इसके रचयिता शाद, अज़ीमाबादी ही हैं जिनके कुछ

शेर आप ऊपर पढ़ चुके होंगे। रात का पिछला पहर है। ईश्वर, इस्लाम के पैग़म्बर, महम्मद, को जगा रहा है कि उठो नमाज़ का वक़्त हो गया है। क़ुरान पर एक स्थान में महम्मद को 'काली कमली वाला' कहा गया है। अब इस कविता के कुछ शेर सुनिए—

उठ मेरे काली कमली वाले।
रात चली है जोगिन बन कर।
ओस से अपने मुँह को धोकर॥
लट छटकाये बाल सँवारे।
उठ मेरे काली कमली वाले॥
रो के हमारा नाम जो लेगा।
नालये दिल से काम जो लेगा॥
टूट पड़ेंगे अर्श से तारे।
उठ मेरे काली कमली वाले॥

यह पूरी कविता इसी रची हुई शैली में कही गई है। क्या संगीत है और किस रस में यह कविता डूबी हुई है!

अब इस प्रसंग में मैं आज अधिक न कह कर सिर्फ़ इतना कहूँगा कि सरलता, स्वाभाविकता, सरसता और प्रवाह के साथ साथ बीस-पचीस फ़ी सदी संस्कृत शब्द और साठ-पैंसठ फ़ीसदी ठेठ हिन्दी शब्दों के साथ अगर पाँच-सात फ़ीसदी फ़ारसी शब्द भी हिन्दी कविता में आ गए तो हमारी भाषा को चार चाँद लग जायेंगे। ऐसा करने से न हमारा धर्म ख़राब होगा न हमारी भाषा। हमारा पिंगल, संस्कृत शब्द, हमारे भावों और शब्दों की ध्वनि ऐसी चीज़ें हैं जो हमारी पूरी संस्कृति, हमारे हिन्दीपन और हिन्दूपन दोनों की रक्षा कर लेंगी। आज कल हमारे हिन्दी पढ़ने-लिखने वाले लोग उस वायु-मंडल में जी रहे हैं जहाँ फ़ारसी के सरस, मृदुल और ललित शब्द भी कानों कान नहीं सुनाई देते न ठेठ तद्भव शब्दों से बने हुए ऐसे वाक्य सुनाई दे रहे हैं जिनमें

खड़ी बोली की मनमोहनी चहकार हो क्योंकि यह चहकार उर्दू कविता ही में सुनाई देती है और उर्दू गद्य में भी। और हिन्दी वालों ने दोनों की तरफ़ से कान बन्द कर रखे हैं। बहुत एकाग्रचित्त होकर सुन्दर उर्दू कविता को ठीक तरह पढ़ने और बार बार गुनगुनाने से वह तमाम बातें हमारे अन्दर बस जाँयगी जो निखर कर फिर हमारी हिन्दी रचनाओं में प्रकट हो सकती हैं। ग़ालिब का शेर है—

हसद से दिल अगर अफ़सुर्दा है गर्मे तमाशा हो।
कि चश्में तंग शायद कसरते नज़्ज़ारा से वा हो॥

अगर द्वेष से तेरा दिल बुझा हुआ है तो आँखें खोल कर अपनी चारों तरफ़ के दृश्य को देख कर अपने अन्दर जोश और सरगरमी पैदा कर। शायद इस तरह दृश्यों के बाहुल्य से तेरी तंग (संकुचित, अवगुंठित) आँखें खुल जाँय। दुनिया बहुत बड़ी है। हिन्दी के साहित्यिकों को इसे नहीं भूलना चाहिए न किसी और भाषा के साहित्यिकों को। पुरानी संस्कृत और नई पुरानी हिन्दी और कुछ बँगला मराठी ग्रंथों के अनुवाद से ही हिन्दी साहित्य में विस्तार और महानता नहीं पैदा की जा सकती! मुसीबत तो यह है कि हमारे अधिकांश लेखक बचपने ही से तो लेखक बन बैठते हैं। जब इस तरह का बीस-इक्कीस बरस का साधारण युवक कभी मुझ से आकर कहता है कि आपने मेरी कविताओं का नया संग्रह देखा तो मैं उसका मुँह देखने लगता हूँ। यह एक विचित्र दुर्भाग्य है कि हमारे देश में काव्य करने की या साहित्य-रचना करने की प्रवृत्ति और योग्यता के साथ साथ अध्ययन की क्षमता कम होती जाती है। विदेशी अंग्रेज़ी राज्य से जो घातक क्षति और हानि हो रही है हम उसे निगल रहे हैं और वह हमें निगल रही है। लेकिन अँग्रेज़ी साहित्य और उसके द्वारा विश्व-साहित्य से जो लाभ हमको पहुँच सकता है हिन्दी के होनहार लिखने वाले उससे अधिकतर वंचित हैं। मेरी निराशा बहुत बढ़ जाती है जब श्री राहुल सांकृत्यायन

ऐसे लोग भी जो बहुत कुछ इस ज़माने से और विश्व-साहित्य से फ़ायदा उठा चुके हैं कभी कभी ऐसी भाषा लिखने लगते हैं जिनमें संस्कृत हिन्दी का गला घोटती हुई नज़र आती है। बड़ी मुसीबत है। जो हिन्दी सुलेखक नर्म और रोचक भाषा लिखना चाहते हैं वह विश्व-साहित्य से अनभिज्ञ हैं और जो विश्व-साहित्य की जानकारी रखते हैं वह भाषा में पंडिताऊपन दिखाते हैं। बस, दो-चार लेखक हिन्दी गद्य-पद्य में भाषा की सरलता और स्वाभाविकता में और अपने विचारों में वर्त्तमान काल की सुशिक्षित और सुसंस्कृत बातें रखते हैं। लेकिन मेरा ऐसा कहना भी शायद अत्युक्ति है।

बात कहाँ से कहाँ पहुँच गई। मुझे सर महम्मद इक़बाल के बारे में एक किंवदन्ती घटना याद आई। कहा जाता है कि वह जवानी में उर्दू कविता करते हुए कभी-कभी इस ख़याल से डर जाते थे कि मैं तो पंजाबी हूँ, उर्दू भाषा के संरक्षक लखनऊ वाले हैं, वह न जाने कितनी अशुद्धियां मेरी कविता में पायें। इसलिए जब अपनी जवानी में वह एक बार लखनऊ आये तो उस समय के लखनऊ के सब से बड़े उर्दू कवि अनीस के नवासे प्यारे साहब रसीद के घर गये। रस्मी बातों के बाद शेरोशायरी का दौर आया। इक़बाल अपनी कुछ रचनाएँ सुनाने लगे। उनमें शायद फ़ारसी और अरबी के शब्द ज़रूरत से ज़्यादा मात्रा में सुनाई पड़े। वह सत्तर बरस का बुड्ढा सुनता जाता था और जब ऐसी कोई पंक्ति आती थी तो एक साथ और अज्ञात व्यङ्ग के स्वर में वह कह उठता था 'ख़ूब'। अब और भी कठिन शब्द की पंक्तियाँ आईं तो 'ऊ' के स्वर को और खींचते हुए और आश्चर्य से आखें फ़ाड़ कर वह फिर कहता कि 'ख़ूSब' और जिन पंक्तियों में फ़ारसी और अरबी ने मातृभाषा का गला घोंट दिया था उन्हें सुन कर तो और खींच कर कहा 'ख़ूSSSSब'। जब इक़बाल चुप हुए तो रसीद ने एक ख़ास भोलेपन से पूछा कि जो शेर सुनाये हैं इनके अलावा आपने कुछ उर्दू में भी कहा है?

ग़ालिब का क़िस्सा तो आप को मालूम ही है कि जब वह ऐसी सरल कविता नहीं कह सकते थे जैसी उन्होंने बाद में की और जिसने उनके नाम को अमर कर दिया तो किसी ने उन पर इस शेर में चोट की थी—

मज़ा कहने का जब है एक कहे और दूसरा समझे।
मगर अपना कहा यह आप समझें या ख़ुदा समझे ॥

उर्दू वाले भाषा ही पर ज़ोर नहीं देते। अब इसके उलटा एक कहानी सुनिए। नूह नारवी उर्दू के एक ऐसे कवि हैं जो अभ्यस्त छन्द लेखक की हैसियत से बहुत मशहूर हैं हालां कि उनके शेर बहुत हलके-फुलके होते हैं, उनकी बातों में गहराई नहीं होती, वज़नदार भाव और विचार नहीं होते। वह एक दूसरे उर्दू कवि से कहने लगे कि मैं 'पहले बहुत छान लेता हूँ तब कुछ कहता हूँ।' उसने छूटते ही कहा कि 'इतना छानने के बाद कुछ रह भी जाता है ?'

असग़र गोंडवी बड़े उच्च कोटि के कवि थे। लेकिन उन्होंने बीस से चालीस बरस तक जितनी कविता की थी उसे जला दिया। वह अचानक बहुत मामूली कविता का आदर्श छोड़ कर बहुत उच्च आदर्श की कविता करने लगे। इस तरफ़ उनको किसी साहित्यिक ने नहीं मोड़ा बल्कि उनके धर्म-गुरु ने इस तरफ़ उनका ध्यान दिलाया। उनके धर्म-गुरु जब उनसे उनकी कविताएँ सुनते और उनमें वही चूमाचाटी या छेड़छाड़ पाते जो उस ज़माने में उर्दू के साधारण कवियों के यहाँ होती थी तो कह उठते कि यह क्या बका है ? फ़ौरन अपना कुल कलाम असग़र की नज़र से गिर जाता और फिर वह जी तोड़ करके शेर कहते जिन्हें सुन कर उनके धर्म गुरु कुछ प्रसन्न होकर मुस्कुरा देते। इस तरह असग़र की काव्य-वृत्ति और अभिरुचि रच उठी। गुरु की एक नज़र ने उनको मामूली तुकबन्द से महाकवि बना दिया।

हाली लिखते हैं कि उनको शेफ़्ता की राय पर इतना भरोसा

था कि किसी शेर को वह चाहे बरसों तक सराहनीय समझते रहे हों, जब वह शेफ़्ता को सुनाते थे और शेफ़्ता चुप रहते थे तो वह शेर हाली की नज़र से गिर जाता था।

एक बार आतश के शागिर्द नवाब रिन्द ने उस्ताद को अपना यह शेर सुनाया—

अगरई का है गुमां, शक है मलागीरी का।
रंग लाया है दुपट्टा तेरा मैला होकर॥

और घमंड से कहने लगे कि ऐसा शेर कोई कहे तो दाँतों पसीना आ जाय। उसी समय आतश का दूसरा शागिर्द सबा वहाँ आ गया। आतश ने कहा, 'म्यां, मैला के क़ाफ़िये में ज़रा अपना शेर तो सुनाना।' सबा ने पहले तो टालना चाहा लेकिन उस्ताद के आग्रह से अपना शेर सुनाया—

बाग़बाँ बुलबुले कुश्ता को कफ़न क्या देता।
पैरहन गुल का न उतरा कभी मैला होकर॥

माली मरे हुए बुलबुल को कहाँ से कफ़न देता जब यह हाल है कि गुलाब के फूल का वस्त्र (उसकी पंखड़ियाँ) एक बार धूमिल और गन्दा हो जाने के बाद फिर न उतरा। जब दुनिया की बे सरोसामानी का यह हाल है कि सौन्दर्य का वस्त्र या रूप एक बार मैला पड़ जाने के बाद या मुर्झाने के बाद फिर नया नहीं किया जा सकता तो प्रेमी की लाश अगर बे कफ़न रह गयी तो इस पर क्या अफ़सोस या आश्चर्य किया जाय। सबा के शेर का रिन्द के शेर से तुलना करके देखिए कि बात कहाँ से कहाँ पहुँच गई। दोनों ने एक ही समस्या की पूर्ति की थी और दोनों ने वस्त्र के मैला पड़ जाने का ज़िक्र किया। दोनों के यहाँ तुकान्त "मैला होकर" है। लेकिन कहाँ सबा का शेर, कहाँ रिन्द का शेर!

सबा का पूरा शेर पढ़िये और उसके बाद यगाना के नीचे लिखे हुए शेर में उसी मज़मून का फिर से चमक जाना देखिए—

ज़मी पै नूर के पुतलों ने क्यों ढई दी है।
कफ़न मिले तो समझना धनी थे क़िस्मत के ॥

रूपवान ज़मीन पर धरना देकर क्यों बैठे हैं? यह वो स्थान है कि यहाँ कफ़न भी मिल जाय तो समझना धनी थे क़िस्मत के। वही बात है, पैरहन गुल का न उतरा कभी मैला होकर। सरल स्वाभाविक बोलचाल की भाषा का जो सम्बन्ध सरसता और उत्कृष्टता से है उसके बारे में हिंदी वालों को एक धोखा है। वह समझते हैं कि जब तक पांडित्यपूर्ण संस्कृत शब्द कविता में न आवें तब तक ऊँची बात कही नहीं जा सकती। उर्दू को कौन कहे, कबीर, तुलसी, रहीम इत्यादि के सरल पद भी उनकी नज़रों से गिर चुके हैं। उर्दू के सरल शेर दो तरह के होते हैं—एक वह जिनमें भाषा तो सरल और सुन्दर होती है लेकिन भाव और विचार बिल्कुल छिछले होते हैं, दूसरे वह जिनमें भाषा सीधी-सादी होते हुए भी भाव और विचार संसार के महान् साहित्य से कांधा रगड़ते हुए नज़र आते हैं। इन दो तरह की सरलताओं में जो अन्तर है उसके समझने ही पर हमारी काव्य-मर्मज्ञता और हिंदी काव्य-रचना का भविष्य भी निर्भर है। अपनी बातचीत में मैं अधिकतर वही उर्दू शेर सुनाता हूँ जो सरल भी हैं और उत्कृष्ट भी। ताँगे और इक्के वाले जो ग़ज़लें गाते हैं उनके यह शेर नहीं हैं।

मैं आज की बातचीत आपको एक घटना सुनाकर समाप्त कर दूँगा। अब से तीस बरस पहले तक सन्दीले के नवाब हर साल एक मुशायरा बड़ी धूम-धाम से करते थे जिसमें सैकड़ों शायर और हज़ारों सुनने वाले शरीक़ होते थे। एक साल तरह या समस्या थी 'इधर फ़टना गरेबां का ऊधर पैदा सहर होना।' सहर, सफ़र, कमर, इत्यादि

काफ़िया थे और होना रदीफ़ थी ! हमारे शहर गोरखपुर के एक अभ्यस्त कवि मिर्ज़ा फ़हीम की ग़ज़ल में एक शेर था—

चलन सीखा तो इसने तेरी ज़ुल्फ़ों की दराज़ी का।
न आया शामे फ़ुर्क़त को हमारी मुख़्तसर होना॥

हमारी वियोग की सन्ध्या ने तेरे केशों की लम्बाई का अनुकरण करना सीखा है। मेरी सन्ध्या को मुख़्तसर होना न आया। वह इस शेर को बहुत मामूली समझते थे, मज़मून भी पुराना था और वह इसे मुशायरे में पढ़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने आरज़ू से राय ली। आरज़ू ने सिर्फ़ एक लफ़्ज़ बदल दिया और शेर आसमान पर पहुँच गया। आरज़ू ने कहा कि इस शेर को यों बना लो—

चलन सीखा तो सीखा तेरी ज़ुल्फ़ों की दराज़ी का।
न आया शामे फ़ुर्क़त को हमारी मुख़्तसर होना॥

फ़हीम की पहली पंक्ति में 'इसने' का टुकड़ा ठस था और बेकार भी था। 'सीखा तो सीखा' करके आरज़ू ने बुरे शेर को किस तरह चमका दिया है ! अब उसमें एक ठोल-मठोल और व्यंग पैदा हो गया, भाषा और शब्दों में रवानी (प्रवाह) पैदा हो गई। मज़मून नहीं बदला, बात वही रही, लेकिन जब मुशायरे में बदली हुई सूरत में यह शेर पढ़ा गया तो सब ने उसकी तैयारी और सजावट की तारीफ़ की। मातृभाषा के सजाने में कितनी मेहनत उर्दू के कवि करते हैं इसी घटना से आपको इसका पता चल जायगा।

छठीं बातचीत

अभी तक मैं आपको जो शेर सुनाता रहा वह किसी एक विषय पर नहीं थे बल्कि अनेक विषयों पर थे। उर्दू ग़ज़ल का पूरा आनन्द उठाने के लिए यह ज़रूरी है कि उसका साँचा, उसकी काट-छाँट, उसका विचार-क्षेत्र और उसकी technique समझ ली जाय। ग़ज़ल अजब चीज़ है। ग़ज़ल शब्द का मतलब है औरतों से या माशूक़ से बातचीत करना। व्यवहार में ग़ज़ल का यह अर्थ ग़ज़ल के अर्थ की नींव बन गया है। हुस्न और इश्क़, प्रेमी और प्रिया के अनेक सम्बन्ध, अनेक पारस्परिक भाव और व्यवहार सब ग़ज़लों के नहीं लेकिन अधिकतर ग़ज़लों के मुख्य विषय रहे हैं। प्रेम और सौन्दर्य, उनके लौकिक और अलौकिक पहलू तथा लौकिक और अलौकिक का मेल ग़ज़ल की पंक्तियों के मुख्य विषय रहे हैं। लेकिन प्रेम और सौंदर्य के विषय में ऐसी व्यापकता है कि पर्दे पर्दे में इसी बहाने ग़ज़ल के कवि सब कुछ कह जाते हैं। ग़ज़ल में प्रेम और सौन्दर्य और इन्हीं की झलकियों में जीवन और संसार का नित्य रूप दिखाया जाता है। बहुत मौक़ों पर प्रेम और सौन्दर्य-सूचक शब्दों का सहारा छोड़ कर सीधे-सीधे ज़िन्दगी और दुनिया पर बातें कही जाती हैं; ख़ास कर व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के नैतिक अंग और नैतिक समस्याओं पर। जगत-व्यापी भावों और विचारों को भी ग़ज़ल में व्यक्त किया जाता है। अस्तित्व और जीवन पर मानवी और दार्शनिक भाव और विचार प्रकट किये जाते हैं। कभी कभी तो यह बातें सीधे-सीधे कही जाती हैं और कभी कभी रूपकों के द्वारा कही जातीं हैं। उर्दू ग़ज़ल के कुछ रूपक ये हैं—साक़ी, मैख़ाना, पैमाना, साग़र, शराब, मस्ती, होश और जुनूँ, गुलज़ार और सहरा, बहार और ख़िज़ां, गुलो बुलबुल, क़फ़स, आशियाना, सैयाद, बाग़बां, गुलचीं, घटा और

बिजली, क़ैदख़ाना और ज़ञ्जीर, कारवाँ, मंज़िल, वतन और ग़ुरबत (परदेस), शमा और परवाना, आसमान और नक्षत्र, महशर, दोज़ख़, जन्नत, सुब्हे अज़ल और शामे अबद इत्यादि इत्यादि।

इन रूपकों में से सिर्फ़ एक रूपक चुन कर हम आज आपको कुछ शेर सुनायेंगे। यह रूपक होगा शमा और परवाने का। उर्दू का शायद ही कोई ऐसा कवि हो जिसने दर्जनों शेर इस विषय पर न कहे हों। मेरी नज़र से इस विषय पर गुज़रे तो होंगे कई सौ शेर लेकिन सौभाग्य से मेरी स्मृति घटिया चीज़ों को सुरक्षित नहीं रखती। इसलिए इस विषय के कुछ ऐसे शेर आज आपको सुनाता हूँ जिनमें काव्य-शक्ति का पूरा पूरा चमत्कार नज़र आता है।

महाकवि मीर का यह शेर सुनिए—

फिर न देखा कुछ बजुज़ इक शोलये पुर पेचोताब।
शमा तक हमने तो देखा था कि परवाना गया॥

फिर मैंने सिवा एक छोटी सी पेच खाई हुई लौ के कुछ न देखा। दूसरी पंक्ति का अर्थ साफ़ है। बात की बात में एक दृश्य दूसरे दृश्य में परिवर्तित हो गया। दूसरी पंक्ति में 'तो' के शब्द में जो करुणा और भोलापन है, ध्यान देने की चीज़ है। बस शमा तक पहुँचने की देर थी, देखते देखते पतिंगा एक थरथराते हुए शोले में बदल गया। किस नर्मी से एक तीव्र और भीषण परिवर्तन की तरफ़ कवि ने संकेत किया है! संसार और जीवन के इतिहास का दुनिया में क्या से क्या हो जाने का इस शेर को रूपक समझिए। बस एक आंच लग जाने की कसर रहती है।

आसी, ग़ाज़ीपुरी का यह शेर सुनिए—

सुब्ह तक वह भी न छोड़ी तूने ऐ बादे सबा।
यादगारे रौनक़े महफ़िल थी परवाने की ख़ाक॥

ऐ पिछले पहर चलने वाली हवा, तूने सुब्ह होते होते उसे भी नहीं छोड़ा। रात भर जमी हुई महफ़िल की रौनक़ की केवल एक यादगार थी यानी जले हुए परवाने की राख तू उसे भी उड़ा ले गयी। शेर को पढ़िए और ठंडी सांसे लीजिए। करुणा कल्पना को बड़े सौभाग्य से हाथ आती है। दुखान्तक घटनाओं को कल्पना के साँचे में ढालना मानवी जीवन का बहुत बड़ा अधिकार है। शेर के टुकड़ों पर ग़ौर कीजिए। पहली पंक्ति में 'तक', 'वह भी न छोड़ी', 'तूने', 'ऐ बादे सबा' की ध्वनि पर ध्यान दीजिए। दूसरी पंक्ति में 'रौनक़े महफ़िल', 'यादगार', 'परवाने की ख़ाक'—हर शब्द नगीने की तरह जड़ा हुआ है। प्रत्येक टुकड़े में कितनी करुणा भरी हुई है। शेर के अर्थ और शेर की ध्वनि में कितना सामंजस्य है। भाव और ध्वनि की यह समता किसी घटना के इस तरह संगीत बन जाने की कितनी अच्छी मिसाल है।

मैंने यह शेर आसी के दीवान में तो पचीस वर्ष की उम्र में पढ़ा लेकिन मेरी उम्र शायद दस बरस की रही होगी जब मैंने शहाबुद्दीन ग़ौरी और पृथ्वीराज की लड़ाई का हाल पढ़ा था। दोनों सेनायें कट मर चुकी थीं और वर्णन के अन्त में यह शेर उद्धृत था। लड़ाई के बाद रणक्षेत्र का यह वर्णन मुझे अब तक नहीं भूला। बल्कि जब मैंने आसी के दीवान में यह शेर पढ़ा तो अकस्मात मेरा दिल कह उठा कि यह शेर यहाँ क्यों है? इसे तो वहीं होना चाहिए था जहाँ पृथ्वीराज और ग़ौरी की लड़ाई का वर्णन समाप्त हुआ है।

अब ग़ालिब का यह शेर सुनिए—

> दाग़े फ़िराक़े सोहबते शब की जली हुई।
> एक शमा रह गई थी सो वह भी ख़मोश है॥

रात की सभा के वियोग के दाग़ या ग़म से जली हुई बस एक शमा सुब्ह को रह गयी थी, अब वह भी चुप है यानी बुझ गई है।

आपने बुझे हुए चिराग़ या बुझी हुई शमा को दिन में देखकर कभी अपने भावों की कुछ जाँच पड़ताल की है ? क्या इस दृश्य से एक अर्धज्ञात रूप से कुछ शोक, कुछ पछतावा कुछ करुणा आपके दिल में पैदा नहीं हुई ? ऐसा ज़रूर हुआ होगा। लेकिन यह ऐसा दबा दबा हुआ सा भाव है कि इसको व्यक्त करने में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

यगाना का यह शेर सुनिए—

ज़माने की हवा बदली निगाहे आशना बदली।
उठे महफ़िल से सब बेगानये शमये सहर होकर ॥

भोर (उर्दू में यह शब्द स्त्रीलिंग है) हो रही है, ज़माने की हवा बदल गई; उसके साथ परिचित दृष्टि भी बदल गई, जाने-बूझे लोगों की आँखें बदल गयीं। रात भर जलती हुई शमा के चारों तरफ़ बैठने वाले सुबह को अँगड़ाइयाँ ले ले कर उठे और ऐसा उठे कि गोया शमा से वह बिलकुल अपरिचित हैं। अब शमा अकेले जल रही है। उर्दू कवियों ने फ़ारसी साहित्य से जिन रूपकों को लिया है उनके द्वारा महान से महान जटिल से जटिल घटना पर वह हल्के-फुल्के शब्दों द्वारा आधिपत्य प्राप्त कर लेते हैं। कहाँ शमा और परवाना, कहाँ शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज की लड़ाई ! लेकिन मालूम ऐसा होता है कि आसी का शेर उस लड़ाई से बड़ी चीज़ है और वह लड़ाई इसी लिए हुई थी कि यह शेर कहा जाय। आसी का शेर नियम और सिद्धान्त मालूम होता है और वह लड़ाई उस नियम की एक मामूली मिसाल।

अब यगाना ही की एक रुबाई सुनिए—

चारा नहीं कोई जलते रहने के सिवा।
साँचे में फ़ना के ढलते रहने के सिवा ॥
ऐ शमा तेरी हयाते फ़ानी क्या है।
झोंके खाने, सँभलते रहने के सिवा ॥

अब अज़ीज़ लखनवी का शेर सुनिए—

शमा बुझ कर रह गई, परवाना जल कर रह गया।
यादगारे हुस्नो इश्क़ एक दाग़ दिल पर रह गया॥

शेर का मतलब साफ़ है। पहली पंक्ति में क्रिया 'बुझ कर रह गई—,—जल कर रह गया' पंक्ति की सौन्दर्य की जान हैं। दो पूरे वाक्य निखरे हुए और सरस रूप में स्वाभाविक और संगीतमय ढंग से एक ही पंक्ति में मौजूद हैं। उर्दू कविता में थोड़े से शब्दों के वाक्य या जुमले ख़ूबसूरत समझे जाते हैं। समझने में देर नहीं लगती। ऐसे टुकड़े हमारे भाव की धड़कन की एक पूरी एकाई होते हैं। दूसरी पंक्ति में पहली पंक्ति वाली घटनाओं के बाद कवि कहता है कि पतिंगा रूपी प्रेमी और शमा रूपी सौन्दर्य दोनों जल-बुझ कर रह गए। सौन्दर्य और प्रेम की यादगार अब दिल पर सिर्फ़ एक दाग़ हो कर रह गया।

फ़साहत लखनवी का यह शेर सुनिए—

मुझमें और शमा में होती थीं ये बातें शबे हिज्र।
आज की रात बचेंगे तो सहर देखेंगे॥

सहर=प्रातःकाल या उषाकाल। अब शेर का मतलब बिल्कुल साफ़ है। वियोग की रात है, प्रेमी अकेला है, शमा जल रही है। रात भर शमा जलेगी और प्रेमी जागेगा। दोनों में रात भर इसके सिवा और क्या बातें हो सकती हैं कि अगर आज की रात बच गए तो सुबह देखना नसीब होगा। शेर का पूरा ज़ोर इस टुकड़े में है—'आज की रात बचेंगे।'

जिगर, गोरखपुरी का यह शेर सुनिए—

शबे फ़िराक़ यही मशग़ला था आशिक़ का।
कभी चराग़ जलाना कभी बुझा देना॥

घबराहट और बेचैनी की इस शेर में कैसी तस्वीर खींची गई है। प्रेमी अकेला है, शमा जल रही है। घबराहट में वह चाहता है कि सो जायँ और शमा को बुझा देता है। नींद नहीं आती तो घबरा कर फिर उठता है और फिर शमा को जला देता है। इसी तरह शमा को जलाते और बुझाते रात कट जाती है।

किसी और का यह शेर याद आ गया—

बे ख़ुद ऐसा किया ख़ौफ़े शबे तनहाई ने।
सुब्ह से शमा जला दी तेरे सौदाई ने॥

वियोग की रात के डर से घबरा कर तेरे पागल प्रेमी ने सुब्ह से शमा जला दी।

फिर ग़ालिब का एक शेर याद आ गया—

ग़में हस्ती का असद कैसे हो जुज़मर्ग इलाज।
शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक॥

ऐ असद (ग़ालिब का नाम असद उल्लाह ख़ाँ था), जीवन के दुख और शोक का मृत्यु के सिवा कैसे इलाज हो सकता है। शमा को देखो कि हर रंग में, चाहे दुख हो या सुख, सुब्ह होने तक उसे जलना पड़ता है।

ज़ौक़ का शेर सुनिए—

ऐ शमा तेरी उम्रे तबीई है एक रात।
हँस कर गुज़ार या इसे रो कर गुज़ार दे॥

ऐ शमा, तेरी माँगी हुई आयु केवल एक रात है। अब यह तेरे ऊपर है कि तू इस एक रात को हँस कर गुज़ार दे या रो कर गुज़ार दे। शमा की लौ तो हँसने का चित्र है और उसका पिघलना रोने का चित्र है। इस बात ने शेर में और भी ख़ूबी पैदा कर दी है।

अज़ीज़ लखनवी का एक और शेर याद आया—

शमयें अफ़सुर्दा जहाँ फूल हैं पज़ मुर्दा जहाँ।
दिल को उस गोरे ग़रीबाँ में पुकारा होता॥

तुम दिल को इधर उधर आवाज़ देते हुए फिर रहे हो। अरे जहाँ चिराग़ फीके पड़ गए हैं और मुर्झाए हुए फूल पड़े हुए हैं उस क़ब्रिस्तान में दिल को पुकारा होता।

आरज़ू लखनवी का यह शेर सुनिए—

हुस्न और इश्क़ की लाग में अक्सर छेड़ उधर से होती है।
शमा का शोला जब लहराया उड़ के चला परवाना भी॥

शेर बिल्कुल साफ़ है। इसे बार बार पढ़िए और मज़ा उठाइए। 'छेड़ उधर से होती है' इस रहस्य को समझिए। आरज़ू ही की यह पंक्ति देखिए।

वह झोंके सर्द हवाओं के वह दिल के कँवल का लहराना।

शमादान (candlestand) अक्सर कँवल के फूल के रूप का बनता है। इसलिए उर्दू में कँवल का दोनों अर्थ है, कँवल का फूल और शमा।

मुझे कुछ अपने शेर याद आ गये—

तेरी याद शमये हयात है तो मैं कैसे हिज्र में साँस लूँ।
कि ये नर्म नर्म हवाय ग़म कहीं यह कँवल भी बुझा न दे॥

तेरी याद मेरे जीवन का चिराग़ है। साँस लेते हुए भी डर लगता है कि प्रेम के ग़म की नर्म नर्म हवा कहीं इस कँवल को भी न बुझा दे।

गुज़रेगा हो के गोरे ग़रीबाँ से आज कौन।
सौ मर्तबा चराग़े लहद झिलमिला चुके॥

आज क़ब्रिस्तान से हो कर कौन गुज़रने वाला है? उसके आने

की प्रतीक्षा में क़ब्र के चिराग़ कई बार झिलमिला चुके। यह थरथराहट इन्तज़ार की उत्कंठा को प्रकट करती है।

ये नर्म नर्म हवायें हैं किस के दामन की।
चराग़े दैरो हरम क्यों हैं झिलमिलाये हुए ॥
जहां में थी बस एक अफ़वाह तेरे आने की।
चराग़े दैरो हरम झिलमिलाए हैं क्या क्या ॥
सुब्ह को देख जो आलम है सरे शमये ख़मोश।
रह गई बात सरे बज़्म तो परवाने की ॥

रात की सभा विसर्जित हो चुकी है। शमा बुझ चुकी और शमा के नीचे परवाने की ख़ाक है। यही ख़ाक सब से महत्वपूर्ण चीज़ है। महफ़िल में अगर किसी की बात रह गई, किसी की टेक रह गई, किसी का नाम रह गया, किसी की स्मृति रह गई तो परवाने की।

तीरा बख़्ती नहीं जाती दिले सोज़ाँ कि फ़िराक़।
शमा के सर पै वही आज धुआँ है कि जो था ॥

ऐ फ़िराक़, मेरे जलते हुए दिल के भाग्य की कालिमा नहीं मिटती। आज भी जलती हुई शमा के सर पर वही धुआँ है जो आदिकाल से था।

हुस्न चमक गया तो क्या, बूये वफ़ा तो उड़ गयी।
इस नयी रोशनी ने आह दिल का कँवल बुझा दिया ॥

—यगाना

सौन्दर्य पहले ही प्रकाशमय था। प्रेम और जवानी के प्रभाव से वह और भी चमक गया। यह तो हुआ लेकिन उससे वफ़ा की बू उड़ गई यानी उसमें निष्ठुरता और बेवफ़ाई आ गई और चंचलता भी आ गई। इस नई रौशनी ने (हुस्न के और चमक जाने ने) प्रेमी के दिल का चिराग़ बुझा दिया अर्थात् प्रेमी का दिल उदास हो गया।

अब दाग़ का वह शेर सुन लीजिए जो उन्होंने तेरह बरस की उम्र में कहा था और जिसको सुन कर ग़ालिब फड़क उठे थे।

रुख़ रौशन के आगे शमा रख कर वह यह कहते हैं।
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है॥

चंचल माशूक़ ने अपने दमकते हुए चेहरे के सामने जलती हुई शमा रख कर कहा है कि देखें पतिंगा उधर जाता है या इधर आता है। शेर बहुत तत्वपूर्ण नहीं है लेकिन है बड़े ठाठबाट का।

दाग़ के शागिर्द नूह नारवी का यह शेर सुनिए—

बाक़ी है अभी चार पहर रात का झगड़ा।
ऐ शमये शबे हिज्र मेरा साथ दिये जा॥

पहली पंक्ति बिलकुल साफ़ है। दूसरी पंक्ति में 'शमये शबे हिज्र' का अर्थ है वियोग की रात में जलने वाली शमा।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि पंडित दयाशंकर नसीम का यह शेर सुनिए जिसे पहले भी आपको सुना चुका हूँ—

शमा ने सर पै रखी आग क़सम खाने को।
बख़ुदा मैंने जलाया नहीं परवाने को॥

अन्त में एक शेर अपने स्वर्गवासी मित्र माजिद, इलाहाबादी का आपको सुना कर आज की बातचीत ख़त्म करूँगा।

चन्द घड़ियाँ शमओ परवाने की अच्छी कट गईं।
जलवा तेरे हुस्न का अब तक सरे महफ़िल न था॥

यह शेर उसी दिन से मेरे हृदय में गूँज रहा है जो अब से बीस बरस पहले हालैंड हाल, इलाहाबाद के मुशायरे में उन्होंने अपने ख़ास लय में सुनाया था।

सातवीं बातचीत

जैसा मैं निवेदन कर चुका हूँ कि उर्दू कविता में एक बड़ी रोचक और महत्वपूर्ण चीज़ रूपक (symbols) है जिनका कुछ ज़िक्र मैं पिछली बातचीत में कर चुका हूँ। उसी लेख में एक रूपक यानी शमा और परवाना के प्रयोग की कई मिसालें दे चुका हूँ। उर्दू कविता के यह रूपक जीवन और जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालने में कवि को बड़ी सहायता देते हैं। हिन्दी कविता में कुछ लोगों ने मधुशाला का जो वर्णन किया है और मदिरा-सम्बन्धी जो पंक्तियाँ कही हैं इसके लिए भी हम उर्दू कविता के ऋणी हैं। इन रूपकों का ख़ज़ाना कभी ख़ाली नहीं होता। एक एक रूपक को दो सौ बरस से हज़ारों उर्दू कवि अपनी सैकड़ों पंक्तियों में ला चुके है लेकिन उनकी ताज़गी में और उनकी रंगीनी में फ़र्क़ नहीं आया। हर रूपक सदा बहार और सदा सोहाग है। उर्दू कविता में एक विशेष रूपक या रूपकों का एक समूह बुलबुल, गुल, चमन, बहार, आशियाँ (नीड़), क़फ़स (पिंजड़ा), बिजली, सैयाद और दाम (जाल) है। लेकिन यह सब वह पर्दे और बहाने हैं, वह साधन हैं जो हमें मानवी जीवन और उसकी समस्याओं का ज्ञान कराने में मदद देते हैं। कविता का एक काम यह भी है कि वह हमारी अलग अलग ज़िन्दगी को प्रकृति के अन्य जीवों और योनियों से और प्रकृति के अन्य दृश्यों से मिला दे। यह काव्यमय सहानुभूति हमारी मानवता को मिटाती नहीं बल्कि विस्तृत और महान् कर देती है। इन रूपकों के द्वारा हम अन्य वस्तुओं में समा जाते हैं और अन्य वस्तुएँ हमारे अन्दर समा जाती हैं। आब हम और आप गुलो बुलबुल बन कर इस जीवन को अपनाएँ और उसे समझने की चेष्टा करें। सुनिए—

कुछ क़फ़स में इन दिनों लगता है जी।
आशियाँ अपना हुआ बरबाद क्या ॥
—मोमिन

मोमिन मनोविज्ञान की बड़ी सूक्ष्म समस्याएँ अपनी पंक्तियों में प्रकट करता है। इस शेर का अर्थ यह है कि बहुत दिन हुए हम पकड़ कर पिंजड़े में क़ैद कर दिए गये थे। इस बन्धन में बहुत दिनों तक तो जी उकताता और घबराता रहा लेकिन कुछ दिनों से क़फ़स में जी कुछ बहला हुआ है। यह सोच कर हमारा दिल कुछ काँप जाता है। हम अचानक क़फ़स में क्यों बहल गए? क्या अज्ञात रूप से इस बात की सूचना तो नहीं मिल गई कि हमारा आशियाँ (नीड़) बरबाद हो गया और अगर हम छूटे भी तो बे घर के रहेंगे। पहले जब पिंजड़े में जो घबराया करता था तो शायद उस वक्त तक हमारा आशियाँ सुरक्षित था।

यह शेर सुनिए जिसमें कवि कहता है कि हम क़फ़स से छूट भी गए और चमन में आ गये, अपना आशियाँ भी पा गये लेकिन जी उचाट हो गया। हम चमन में घबरा रहे हैं। जब तक क़फ़स में थे क़फ़स को बदनाम करते रहे। अब तो चमन क़फ़स से भी अधिक उचाट है। यह शेर मैं आपको पहले भी सुना चुका हूँ—

अब चमन में भी किसी सूरत से जी लगता नहीं।
हाँ मगर जब तक क़फ़स में थे क़फ़स बदनाम था ॥
—जगतमोहन लाल, 'रवाँ'

'हाँ मगर' के नम्र व्यङ्ग पर ध्यान दीजिए और 'क़फ़स बदनाम था' के टुकड़े का प्रभाव भी देखिए।

मुझे अपना शेर याद आ गया। शायद यह शेर भी आपको सुना चुका हूँ।

क़फ़स से छुट के वतन का सुराग़ भी न मिला।
वो रंगे लाला व गुल था कि बाग़ भी न मिला ॥

हम क़फ़स से तो छूट गए, चमन तक पहुँच भी गए, अपना आशियाँ भी देख रहे हैं लेकिन इस बीच में बाग़ खिलता गया; उसकी बहार दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती गई। हम बुझा हुआ दिल लेकर वापस आए हैं। लाला और गुलाब के फूलों में वह निखार है, उनका वह रंग है कि अपने घर को अपना घर समझने का साहस नहीं होता; बाग़ ही बदल गया।

डरता हूँ आसमान से बिजली न गिर पड़े।
सैयाद की निगाह सुये आशियाँ नहीं ॥

—मोमिन

मैं क़फ़स में नहीं हूँ बल्कि आशियाँ में हूँ जहाँ हर वक्त इसका धड़का लगा रहता है कि या तो सैयाद हमें घर से छीन लेगा या बिजली हम से घर छीन लेगी। सैयाद की निगाह जब तक आशियाँ की तरफ़ लगी हुई थी उस समय तक कम से कम इतनी सांत्वना थी कि इस आफ़त के होते हुए दूसरी आफ़त न आयगी लेकिन अब यह आफ़त कुछ समय से नहीं है। सैयाद आशियाँ को ताक नहीं रहा है। उसकी निगाह की बिजलियाँ नीचे से आशियाँ पर कौंद नहीं रही हैं। अब डर है कि कहीं आसमान से आशियाँ पर बिजलियाँ न गिर पड़ें। एक आफ़त के जाते ही दूसरी आफ़त का डर पैदा हो गया। मोमिन के ज़माने के कुछ पहले दिल्ली पर अहमद शाह दुर्रानी का हमला हुआ था और फिर बाद को नादिर शाह का; और उसके बाद १८५७ का ग़दर हुआ और एक तरफ़ से जाट दूसरी तरफ़ से अंगरेज़ दिल्ली पर टूट पड़े। दिल्ली पर ताबड़-तोड़ बिजलियाँ टूटीं। इन घटनाओं को ध्यान में रख कर इस शेर का भाव समझिए।

लेकिन जीवन में मनुष्य कभी कभी मुसीबत का स्वागत करता है।

ख़ास कर ऐसी मुसीबतों का जो आये दिन की मुसीबतों से उसे छुटकारा दिला दें। इसी लिए उर्दू कवियों ने कभी कभी आशियाँ के न जलने को भी एक मुसीबत माना है कि कहीं कुछ दिनों की शांति के बाद एक भारी मुसीबत न टूट पड़े। उर्दू का एक निरक्षर और अनपढ़ कवि कितना अच्छा शेर कह गया है—

मुझसा फ़सुर्दा दिल भी न होगा ज़माने में।
बिजली भी आके सर्द हुई आशियाने में॥

कहता है कि इस संसार में इतना बुझा हुआ दिल वाला कोई न होगा जितना मैं। मेरे आशियाने पर बिजली भी गिरी तो वहाँ आते ही सर्द हो गई। अपूर्ण विपत्ति की कैसी अच्छी तस्वीर है। जैसे किसी रोगी को उस हवा से जिससे उसे मर जाना चाहिए था सिर्फ़ लक़वा की बीमारी होकर रह जाय।

ग़ालिब का यह शेर मैं पहले भी आपको सुना चुका हूँ—

क़फ़स में मुझसे रूदादे चमन कहते न डर हमदम।
गिरी है जिस पै कल बिजली वो मेरा आशियाँ क्यों हो॥

शेर का अर्थ भी मैं समझा चुका हूँ। इस समय मैंने सिर्फ़ यह शेर दुहरा दिया कि इसकी याद ताज़ा हो जाय और आप इस शेर का लुफ़्त उठाइये। ग़ालिब का एक और शेर सुनिए—

पिनहां था दामे सख्त क़रीब आशियाने के।
उड़ने न पाये थे कि गिरफ़्तार हम हुए॥

हम तो आशियाने में थे लेकिन बड़ी सावधानी से एक ऐसा कड़ा जाल आशियाने के दरवाज़े ही पर छुपा कर लगाया गया था जो दिखाई न पड़े। हम उड़ने भी न पाये थे अर्थात् ज्यों उड़े अचानक गिरफ़्तार हो गये। अकस्मात आने वाली मुसीबतों का कैसा अच्छा चित्रण इस शेर में है।

आजकल के प्रसिद्ध उर्दू कवि फ़ानी, बदायूनी, (जिनका हाल ही में देहान्त हुआ है) का यह शेर सुनिए—

बिजलियाँ शाखे नशेमन पै बिछी जाती हैं।
क्या नशेमन से कोई सोख्ता सामां निकला ॥

इन पंक्तियों की ध्वनि से और पहली पंक्ति की गर्मागर्मी और तेवर से शैली के लालित्य का अनुभव कीजिए। कहते हैं कि जिस डाल पर नशेमन यानी आशियाना बना हुआ था उस डाल पर बिजलियाँ बिछी जाती हैं। क्या नशेमन से कोई ऐसा पखेरु निकला जो स्वयं अग्नि रूप है जिसके जीवन का और जिसके सरो सामान का एक एक अंश जल चुका है? सोख़्ता सामाँ का मतलब यह है कि जिसका कुल सामान जल चुका हो या तो विपत्तियों से या वैराग्य और तपस्या से। यह अवस्था बड़ी मार्मिक है। ऐसे व्यक्ति पर बिजली क्या गिरेगी, वह एक एक पग पर स्वयं बिजलियाँ बिछाता चलेगा। अच्छा, अब यह शेर सुनिए—

बाग़े आलम में बड़ी चीज़ है यह ऐ बुलबुल।
गुल तो गुल, ख़ार से भी राब्ता पैदा करना ॥

इसके रचयिता का नाम इस समय मुझे याद नहीं आता है। कवि कहता है कि संसार की वाटिका में, गुल तो गुल (बोलचाल की भाषा का लालित्य देखिये) यानी गुलों का क्या ज़िक्र, ऐ बुलबुल, काँटों से संबंध जोड़ लेना बड़ी चीज़ है। काँटों से संबंध जोड़ना स्वयं एक रूपक है जिसमें एक नीति और जीवन की कई समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। अब एक हल्का सा शेर सुनिये जिसमें जीवित प्राणी जीवन की समस्याओं से खेलता है—

दाम इस रंग से गुलशन में बिछाना सैयाद।
मैं सरे शाख़ चालूँ साया तहे दाम चले ॥

—रियाज़

ऐ शिकारी, बाग़ की ज़मीन पर जाल इस ढब से बिछाना कि मैं

तो डाल डाल चलूँ और मेरी परछाईं जाल के नीचे नीचे चले। यानी मुसीबत के बन्धन में मैं न फसूँ, मेरी परछाईं फँसे।

बुलबुल की आवाज़ में कितना तीव्र और सरस संगीत होता है इसको इस शेर में सुनिए—

वो नग़मां बुलबुले रंगीं नवा एक बार हो जाये।
कली की आँख खुल जाये चमन बेदार हो जाये॥

—असग़र

ऐ रंगीन गाना गाने वाले बुलबुल, एक बार ऐसा राग छेड़, ऐसी लय में गा कि कली की आँख खुल जाये और चमन जाग उठे। दूसरी पंक्ति में कितनी मृदुल शैली में कितने सुकोमल दृश्य को चित्रित किया गया है और कितनी मार्मिक बात कही गयी है। संगीत का काम सुलाना और जगाना दोनों है। वह तुर्यावस्था जिसमें जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाएँ मिल जाती हैं कहीं उसी अवस्था के आनन्द का प्रतिबिम्ब तो संगीत का आनन्द नहीं जो आत्मा को उस नर्मी से जगाता है जो नर्मी मीठी नींद में होती है।

अब एक दूसरा शेर सुनिए; कैसा सरस, सरल और करुण है—

असीर कर के मुझे क्यों किया रिहा सैयाद।
वो हमसफ़ीर भी छूटे, वो बाग़ भी न मिला॥

—जलाल

पहले मैं इसी समस्या में अपना शेर दे चुका हूँ। पिंजड़े से छोड़े जाने वाले बुलबुल का कहना है कि ऐ शिकारी, अगर क़ैद ही किया था तो अब छोड़ा क्यों? अब तो साथ के उड़ने वाले भी छूट गये और वह बाग़ भी ढून्ढे न मिला जिसमें क़ैद होने के पहले अपना बसेरा था।

मातम अबतक है असीरी को ज़माना गुज़रा।
हम अभी ताज़ा गिरफ़्तार नज़र आते हैं ॥

—वाक़िफ़, ख़ैराबादी

पिंजड़े में या बन्धन में आए हुए कहने को तो युग बीत गये लेकिन हम ऐसे बेचैन और घबराए हुए दिखाई देते हैं कि अभी अभी पकड़े गए हैं। स्वतंत्रता की लगन ऐसी चीज़ है कि पुराने से पुराने क़ैदी पर इस आग के शोलों का प्रकाश पड़ता है और ग़ौर से देखने पर यह मालूम होता है कि वह अभी अभी पकड़ा गया है। मुक्ति और बन्धन की यह आँख-मिचौनी या भूल-भुलैया ध्यान देने की चीज़ है।

वाक़िफ़ के शेर में जो भाव प्रकट किया गया है उसके प्रतिकूल भाव एक नौजवान उर्दू कवि ने जो बाईस बरस की उम्र में मर गया, इस शेर में प्रकट किया है—

और कुछ बातें करो ऐ हम सफ़ीराने चमन।
यह न पूछो क्यों क़फ़स में मुझको आराम आ गया ॥

ऐ मेरे साथ के चमन में उड़ने वालो, और कुछ बातें करो; यह न पूछो कि पिजड़े में मुझे क्यों आराम आ गया। बन्दी जीवन की अनन्य पीड़ा एक शांति में बदल गई है लेकिन ऐसा क्यों हुआ यह पूछने से बन्दी जीवन की कुल पीड़ाएँ फिर से ताज़ा हो जाती हैं इसलिए क़ैदी चिड़िया अपने स्वतंत्र साथियों को यह बात पूछने से मना कर रही है और कह रही है—और कुछ बातें करो। आज़ादी की आकांक्षा सो गई, उसे छेड़ कर मत जगाओ। सिर्फ़ देखने में यह शेर वाक़िफ़ के शेर से अलग है, वास्तव में दोनों शेर स्वतंत्रता-प्रेम को ही ज़ाहिर कर रहे हैं।

मिसाल यह मेरी कोशिश की है कि मुर्ग़े असीर।
करे क़फ़स में फ़राहम ख़स आशियाँ के लिए ॥

—ग़ालिब

मेरे प्रयत्नों और चेष्टाओं की मिसाल यह है कि पकड़ी हुई चिड़िया पिंजड़े में आशियाँ के लिए तिनके जमा करे। छूटने की कोई आशा नहीं है। चारों तरफ़ से क़ैदी जकड़ा हुआ है लेकिन अपनी स्वतंत्रता के लिए साधन जमा करता जाता है। किस मर्दानगी और साहस का सबूत कवि ने दिया है!

लेकिन कभी कभी तो जीवन के बन्धनों से हार मानना पड़ जाता है और इस हार में भी एक विश्राम है कितना करुण, कितना भावपूर्ण!

दाग़ ने अपने ख़ास रंग में यह शेर कहा है—

मेरे आशियाने के थे चार तिनके।
चमन लुट गया आँधियाँ आते आते॥

मेरे आशियाने के चार तिनके मानो उन तमाम मुसीबतों के केन्द्र बन गये जो इन के कारण पूरे चमन पर टूट पड़ीं। ताबड़तोड़ इतनी आँधियाँ आईं कि चमन बर्बाद हो गया। काव्यपूर्ण भाव मुसीबत को भी क्या से क्या बना देता है! बुद्धि और स्वभाव के अनुसार जिस घटना का इस शेर में ज़िक्र किया गया है उससे करुणा पैदा होना चाहिए लेकिन दाग़ के शेर में ध्वनि ऐसी है कि मानो आँधी के साथ सहानुभूति पैदा हो गई है। वही गर्मागर्मी, वही हलचल जो आँधी में होती है इस शेर में भी पैदा हो गई है। बुलबुल, चार तिनकों का आशियाना और चमन सब के सब आँधियों के झक्कड़ का मज़ा उठा रहे हैं। बर्बादी के विषय को भी ओज और जोश से कवि ने भर दिया है और अपनी ज़िन्दादिली का सबूत दिया है। शिव के ताण्डव नृत्य में भी वही जोश है। इन्क़लाब ज़िन्दाबाद।

इसी विचार को जोशो ख़रोश से अलग करके एक नये व्यंग के साथ इस शेर में बयान किया गया है—

ख़ारोख़स जमा करे नाम नशेमन रख दे।
जिसको मंज़ूर हो गुलशन को बयाबाँ करना॥

—आसी, मेरठी

कुछ काँटे और तिनके एकत्रित करे और उसका नाम आशियाना या नशेमन रख दे अगर गुलशन को वीराना बनाना हो। अर्थात् नक्षत्रों की और प्रकृति की शक्तियों को नशेमन से इतना बैर है, बसे हुओं को उजाड़ने की इतनी लाग है कि अगर काँटों और तिनकों के नाम से भी कोई अपना घर बसाये या छाये तो वह घर ही नहीं बल्कि वह पूरा स्थान वीरान हो जायगा जहाँ यह तिनके इकट्ठा कर दिये जाँय। वही बात हुई कि "चमन लुट गया आँधियाँ आते आते।"

अब आतश का यह शेर सुनिए। किस शान से कहा है—

सैयाद नाला सुनके जो रोया तो लुत्फ़ क्या।
कुंजे क़फ़स में बाग़ से उड़ उड़ के आये गुल॥

अगर बंदी जीवन में हमारा रोना या चीत्कार सुन कर सिर्फ़ शिकरी रोया तो क्या मज़ा? लुत्फ़ तो जब है कि पिंजड़े के कोने कोने में चमन से उड़ उड़ कर फूल चले आयें। आतश ने रुदन में कितना हौसला और कितना ज़ोर भर दिया है।

रेयाज़ का यह शेर सुनिए। देखिए इस शेर में भी किस ठाठ-बाट से अपने दिल की रंगीनी और जोश को रेयाज़ ज़ाहिर करते हैं—

छाये फूलों से भी सैयाद तो आबाद न हो।
वह क़फ़स क्या जो तहे दामने सैयाद न हो॥

अगर शिकारी हमारे पिंजड़े को फूलों से भी छा दे तो पिंजड़ा आबाद नहीं होगा। वह भी कोई पिंजड़ा है जिस पर शिकारी के दामन का साया न हो। पिंजड़े की शोभा यही है कि वह शिकारी के दामन के तले रहे। किस चोटीले प्रेम का सबूत शायर ने दिया है। शिकारी

से उसे कितना लगाव है ! 'सैयाद' का शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है । यह शब्द जीवन के उन विश्वव्यापी नियमों की तरफ़ संकेत कर रहा है जिनसे ईश्वर भी मुक्त नहीं है । इन्हीं नियमों की छत्रछाया में क़ैद भी सुखद बन जाता है ।

न ख़ामोश रहना मेरे हम सफ़ीरो ।
जब आवाज़ दूँ मैं, तुम आवाज़ देना ।।

—सफ़ी

पिंजड़े में बंद क़ैदी चिड़िया कहती है कि ऐ मेरे साथ के उड़ने वालो, तुम मुझसे दूर हो और स्वतंत्र हो लेकिन चुप न रहना । जब पिंजड़े के अन्दर से मैं आवाज़ दूँ तो बाहर से तुम मेरी आवाज़ पर आवाज़ देना । जो लोग स्वतंत्रता की लड़ाई में नज़रबन्द या क़ैद कर दिये जाते हैं उनकी यही आकांक्षा होती है कि जो भाव चहारदीवारी के अन्दर उनके दिल में उठ रहे हैं उसी की नाद वह क़ैदखाने के बाहर से भी सुनें ताकि वह जानें कि बाहर के वायुमंडल में भी "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद" के नारे गूँज रहे हैं ।

अब मैं अपने कुछ शेर आपकी सेवा में पेश करता हूँ—

इन्हीं तिनकों में ढूँढ ऐ बुलबुल ।
बिजलियाँ भी हैं आशियानों में ।।

बिजलियाँ ऊपर से नहीं गिरती हैं । इन्हीं ठंडे और सूखे तिनकों में वह छुपी हुई हैं । हमारे आराम के सामान में ही विपत्तियों के सामान भी मिले हुए हैं । बल्कि वही सामान या उनमें से कुछ हमारी विपत्तियों के समान बन जाते हैं । खाना ज़हर बन जाता है, नींद मौत बन जाती है, प्रेमी और मित्र दुश्मन बन जाते हैं—"बिजलियाँ भी हैं आशियानों में ।"

नीचे लिखा हुआ शेर हम पहले आपको कभी सुना चुके हैं । मेरे ऊपर वाले शेर से यह शेर मिलता जुलता है—

बाग़बां ने आग दी जब आशियाने को मेरे।
जिन पै तकिया था वही पत्ते हवा देने लगे ॥

—साक़िब

उजड़ना था जिन्हें उजड़े भरे गुलज़ार के हाथों।
मुबारक बक़ को ग़ारत गरे सद आशियाँ होना ॥

जिन्हें उजड़ना था वह हरी-भरी बाटिका के हाथों उजड़ गये। बिजली गिरने की ज़रूरत ही नहीं पड़ी। उनके लिए बसना और उजड़ना एक हो गया। सुख ने आस्तीन का साँप होकर उन्हें डस लिया। बिजली को सैकड़ों आशियाना ग़ारत करना मुबारक हो। यह अन्तिम वाक्य व्यंग में कहा गया है यानी जिन्हें सुख मिटा चुका उन्हें विपत्तियाँ क्या मिटायेंगी? विपत्तियाँ दूसरों को मिटायें।

रहेगी याद असीरों की बेख़ुदी सैयाद।
कभी तो सूये गुलिस्तां नज़र गयी होती ॥

निराशा ने क़ैदियों को इतना स्तब्ध कर दिया है, वह निराशा में ऐसे खो गये हैं कि ऐ शिकारी, उनकी यह बेख़बरी या असुधि याद रहेगी। इतने दिनों क़ैद थे लेकिन गुलिस्तां की तरफ़ एक बार आँख उठा कर देखा भी नहीं—"कभी तो सूये गुलिस्तां नज़र गयी होती।"

सैयाद इस क़दर तो फ़रेबे सुकूँ न दे।
इतना तो ख़ुद मुझे भी ग़में आशियाँ नहीं ॥

ऐ शिकारी, पिंजड़े में शान्ति का भ्रम या बहलावा इतना तो न दे। मुझे तो स्वयं अपने आशियाँ का इतना ग़म नहीं। दुख या शोक की पराकाष्ठा यही है कि सब्र आ जाय। ऐसे समय में सांत्वना फ़जूल है—"यह न पूछो क्यों क़फ़स में मुझको आराम आ गया।" जब यह हाल है तो यह कहने की क्या ज़रूरत है कि क़फ़स में बड़ी शान्ति, बड़ा आराम है। दूसरी पंक्ति में "इतना" शब्द रहस्यपूर्ण है। यह दिल की उस घाव की तरफ़ इशारा करता है जो मरहम रखने से और दुखे।

एक एक तिनके पर सौ शिकस्तगी तारी।
बर्क़ भी लरज़ती है मेरे आशियाने से॥

—असग़र, गोंडवी

मेरे आशियाने का एक एक तिनका टूट जाने से चूर चूर है। उसको देख कर बिजली भी लरज़ जाती है।

और इस शेर से तो मैंने इस बातचीत का आरंभ ही किया है—

तमाम उम्र इसी एहतियात में गुज़री।
कि आशियां किसी शाख़े चमन पै बार न हो॥

—महशर

महाकवि इक़बाल का यह शेर सुनिए—

नाला है बुलबुले शोरीदा तेरा ख़ाम अभी।
अपने सीने में इसे और ज़रा थाम अभी॥

ऐ बेचैन बुलबुल, तेरा चीत्कार अभी कच्चा है। थोड़ी देर इसे अपने सीने में रोक ताकि यह पहले पक ले। साधना और सिद्धि के किस सूक्ष्म रहस्य की तरफ़ इस शेर में इक़बाल ने संकेत किया है!

असग़र के ये दो शेर सुनिए—

क़फ़स क्या? हल्क़ाहाये दाम क्या? रंजे असीरी क्या?
चमन पर मिट गया जो हर तरह आज़ाद होता है॥

पिंजड़े, जाल के हल्क़ों (जालियों) और क़ैद के दुख का क्या ज़िक्र। जो चमन पर मिट गया वह तो हर तरह से स्वतंत्र होता है।

यहाँ कोताहिए ज़ौक़े अमल है ख़ुद गिरफ़्तारी।
जहां बाज़ू सिमटते हैं वहीं सैयाद होता है॥

इस संसार में कर्म की प्रेरणा में कमी हो जाना ख़ुद गिरफ़्तारी के बराबर है। कर्म-विहीन बन्दी बन जाता है। उड़ने वाले के बाज़ू जहाँ

सिमटेंगे वहीं सैयाद (शिकारी) छुपा हुआ मिलेगा। उड़ते जाओ, बराबर उड़ते जाओ।

तीलियों पर है नशेमन साज़ तिनकों का गुमां।
अब क़फ़स अपना सरापा हसरते तामीर है॥

—फ़िराक़

पिंजड़े की तीलियों को देखकर यह गुमान हो रहा है कि यह तो वो तिनके हैं जिनसे आशियाना बनाया जा सकता है। अब मेरा पिंजड़ा सर से पैर तक नीड़ निर्माण की साकार आकांक्षा है।

कुछ क़फ़स की तीलियों से छन रहा है नूर सा।
कुछ फ़िज़ा, कुछ हसरते परवाज़ की बातें करो॥

पिंजड़े की तीलियों से कुछ नूर सा छन रहा है। ऐसे समय कुछ खुले हुए वातावरण और कुछ उड़ने की आकांक्षा का ज़िक्र करो।

आतश का यह शेर सुनिए—

मुत्तसिल नालों की आवाज़ चली आती है।
जिस्में ख़ाकी क़फ़से मुर्ग़े गिरफ़्तार न हो॥

मानव-जीवन में लगातार एक आर्तनाद सुनाई दे रहा है। यह मिट्टी का बना हुआ शरीर किसी फँसे हुए पखेरू का पिंजड़ा तो नहीं है?

हसरत मोहानी का यह शेर सुनिए—

क़फ़स में हो दिले बुलबुल शहीदे जलवये गुल।
ख़िज़ाँ ने जो न किया था वो अब बहार करे॥

पिंजड़े में बन्द बुलबुल का दिल फूलों के सौन्दर्य की छटा से घायल हो जाय! जो ज़ुल्म पतझड़ ने नहीं किया था वो अब बहार करे। कितनी ललित भाषा है!

अन्त में हम आपको औरंगज़ेब की लड़की ज़ेबुन्निसा का एक फ़ारसी शेर सुनाते हैं—

नेहाल सरकशो गुल्ल बे वफ़ा व लाला दुरंग।
दरीं चमन ब चे उम्मीद आशियाँ बस्तम।

पेड़ सर खींचे हुए खड़े हैं, गुलाब के फूल बेवफ़ा हैं अर्थात् दो दिन अपनी बहार दिखा कर सूख जाते हैं। लाले के फूल में दाग़ है। इसीलिए उसमें दुरंगी है यानी समता नहीं है। ऐसे चमन में मैंने किस उम्मीद पर आशियाँ बनाया ? यहाँ तो सब के सब ऐंठे हुए हैं।

आठवीं बातचीत

गुल, बुलबुल, आशियाना, बिजली, सैय्याद, दाम और क़फ़स के विषय और रूपक का प्रयोग उर्दू कवियों ने किस तरह किया है इसकी कुछ मिसालें आप पिछली बातचीत में सुन चुके हैं। मुझे आशा है कि इन विषयों पर जो थोड़ी सी पंक्तियाँ मैंने पिछली बातचीत में सुनाई थीं उनमें जीवन का चित्र और जीवन की समालोचना दोनों चीज़ें आपको मिली होंगी। वह शेर कहीं सूक्ष्म थे, कहीं स्पष्ट थे, कहीं यथार्थपूर्ण थे, कहीं रहस्यपूर्ण और कहीं आदर्शवादी थे। उर्दू ग़ज़ल की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि दस-बारह शब्दों का एक शेर देखने में तो किसी एक विषय पर होता है लेकिन होता है विश्वव्यापी। अन्य भाषाओं के निबन्ध-काव्यों में और ख़ुद उर्दू नज़्मों में जो घटना या जो बात वर्णित होती है वह अपनी सीमा या अपने विषय से आगे नहीं बढ़ती। लेकिन उर्दू ग़ज़ल के अच्छे शेरों में हम वह व्यापकता, वह लपेट और समेट पाते हैं जो पूरे जगत और पूरे जीवन को अपनी गोद में ले लेता है। ग़ज़ल के अच्छे शेर प्रायः किसी घटना या दृश्य तक सीमित नहीं रहते। घटना और दृश्य सर्वव्यापी सिद्धान्तों की तरफ़ संकेत करने के लिए लाए जाते हैं। मानव-चरित्र, मानव-जीवन और सम्पूर्ण जगत के अनगिनित पहलू, अंश, और अंग सिर्फ़ अपने अस्तित्व का सबूत नहीं देते बल्कि जीवन और जगत के एक होने का सबूत देते हैं। प्रेम और सौंदर्य पर हज़ारों ऐसे शेर हैं जो जीवन और जगत का पता देते हैं। ग़ालिब कहता है—

हर चन्द हो मुशाहिदये हक़ की गुफ़्तगू!
बनती नहीं है बादाओ साग़र कहे बग़ैर ॥

यद्यपि बातचीत का विषय अनादि सत्य, यथार्थ और जीवन के रहस्य हैं लेकिन शराब और प्याले का ज़िक्र किए बग़ैर काम नहीं चलता।

आज हम उर्दू ग़ज़ल और उर्दू कविता के एक विशेष रूपक और विषय के ऊपर चन्द शेर आपको सुनाएँगे। वह विषय है बहार का। यों तो बसन्त या बहार के विषय पर संसार भर के साहित्य में बहुत कुछ कहा गया है लेकिन उर्दू कविता में यह विषय फ़ारसी साहित्य से लिया गया है। मौसम की तब्दीली, ऋतुओं का बदल जाना एक ऐसी घटना है जिससे हमारा जीवन वाह्य और आंतरिक दोनों रूपों से बहुत प्रभावित होता है। हर मौसम के बदलने के साथ गोया हमारी दुनिया बदल जाती है। हर मौसम के साथ यह पुराना संसार अपने को नया करता है और उसी के साथ-साथ हमारा जीवन भी गोया नया जन्म लेता है। कालिदास के 'ऋतुसंहार' में तो छः ऋतु माने गए हैं लेकिन बसन्त-ऋतु की रंगीनी, सरसता और संगीत और उसकी छवि, उसका मतवालापन दर्शनीय और अद्वितीय हैं। हमारे देश में फागुन का महीना बहार का महीना है और अन्य देशों में भी जाड़े के बाद मार्च का महीना बहार का महीना है। बसन्त-ऋतु में सोयी हुई और सिकुड़ी हुई प्रकृति अँगड़ाइयाँ लेकर फिर जाग उठती है।

अब मीर का यह शेर सुनिए—

चलते हो तो चमन को चलिये, कहते हैं कि बहाराँ है।
पात हरे हैं, फूल खिले हैं, कम कम बादो बाराँ है॥

बहाराँ बहार का बहुवचन है यानी ज़ोरों की बहार। कम कम बादो बाराँ = हल्की हल्की हवा और हल्की हल्की फुहार। अब शेर का मज़ा लीजिए। कवि ने अपनी तरफ़ से बहार की कोई प्रशंसा नहीं की, सिर्फ़ उसका एक दृश्य दिखा दिया। लेकिन भाषा की सरसता, स्वर की मृदुलता और शेर की ध्वनि और संगीत से अजब रंगीनी आ

मस्ती पैदा हो गई है। और दूसरी पंक्ति में 'कम कम' के टुकड़े ने (देखिए कुछ कुछ नहीं कहा, कम कम कहा जिससे भाषा का लालित्य बढ़ गया और शेर की आवाज़ में नर्मी पैदा हो गई) तो बहार की बहार को और भी बढ़ा दिया है। हल्की हल्की हवा है, हल्की हल्की फुहारें हैं।

लेकिन उर्दू कवि प्रकृति की छटा का दिग्दर्शन करते हुए जीवन को भूल नहीं पाते। प्रकृति भी या तो जीवन का क्षेत्र है या जीवन पर प्रकाश डालती है! बेनज़ीरशाह का यह शेर सुनिए—

हुए फूल ख़ुश्क, चमन जला, कहीं नाम को न तरी रही।
यही अपने ज़ख़्म हरे रहे, यही अपनी आँख भरी रही॥

जब बहार आई थी तो उस समय दुहरी बहारें थीं। एक तरफ़ प्रकृति की बहार थी दूसरी तरफ़ जीवन की बहार थी। लेकिन जीवन की बहार ताज़ा ज़ख्म और आँसुओं से भरी हुई आँख की बहार थी। (यह ज़ख़्म और यह आँसू क्यों, इसे न पूछिए)। अब प्रकृति की या चमन की बहार जा चुकी है, फूल सूख गए, चमन जल गया, नाम को कहीं तरावट नहीं लेकिन जीवन की व्यंगपूर्ण बहार पतझड़ में भी क़ायम है। यह बहार स्थाई है—"यही अपने ज़ख़्म हरे रहे, यही अपनी आँख भरी रही।" दुनिया बदली, जीवन न बदला। कितनी हसरत इस शेर में है और कितनी सांत्वना!

बहार पर ग़ालिब के शेर भी बड़े मार्के के हैं। उनका हर एक शेर अपना एक व्यक्तित्व रखता है—

सब कहाँ? कुछ लाला ओ गुल में नुमायां हो गयीं।
ख़ाक में क्या सूरतें होंगी कि पिनहां हो गयीं॥

ज़मीन से अनगिनित फूल खिल उठे। इन असंख्य फूलों को देख कर कवि का ध्यान उनकी बहुतायत पर नहीं जाता बल्कि पृथ्वी की उन संभावनाओं की तरफ़ जाता है जो व्यक्त नहीं हो सकीं। कहता है

कि बहार में करोड़ों फूलों को खिला देख कर हम यह कैसे समझ लें कि पृथ्वी ने अपना पूरा ख़ज़ाना उगल दिया। सब कहाँ? हाँ, पृथ्वी के अन्दर छुपी हुई अनगिनित सूरतें कुछ लाला और गुलाब के फूल के रूप में खिल उठीं। मिट्टी के अन्दर कितनी सूरतें, कितनी अथाह और अपरम्पार रचना-शक्ति छुपी हुई हैं जो प्रकट ही नहीं हुईं। प्रकृति की रचनात्मक शक्तियों की तरफ़ उसके उमँडते हुए जीवन की तरफ़, उसकी उर्वरता की तरफ़, उसके अनन्त विकास की तरफ़ ग़ालिब ने किस शान से इशारा किया है! विज्ञान और दर्शन के सैकड़ों बरस के मनन और निरीक्षण का निचोड़ ग़ालिब के उपर्युक्त शेर में है।

अब ग़ालिब के और कुछ शेर सुनिए—

लताफ़त बे कसाफ़त जलवा पैदा कर नहीं सकता।
चमन ज़ंगार है आईनये बादे बहारी का॥

सूक्ष्म बिना स्थूल के अपनी छटा दिखा नहीं सकता। बहार बड़ी सूक्ष्म चीज़ है। चमन के शीशे में उसको अपनी झलक दिखानी थी लेकिन जब तक आईने के पीछे पारा और रंग इत्यादि न जमा दिये जाँय तब तक आईने में मुँह नहीं दिखाई देता। तो चमन में जो पत्तियों और फूलों का रंग है उसे ग़ालिब ने उस लाल रंग के समान बताया है जो आईने के पीछे जमा दिया जाता है। इस रंग की स्थूलता इसलिए है कि बाहर की सूक्ष्म शक्ति और उसका सूक्ष्म रूप या उसकी आत्मा इस आईने में झलक जाय। अदृश्य को दृश्य बनाने के लिए फूल और पत्ते खिले हुए हैं।

ग़ालिब का यह हल्का सा शेर मानव स्मृति और कल्पना को बराबर अपनी झलक दिखाता रहा है—

फिर इस अंदाज़ से बहार आई।
हो गये मेहरोमह तमाशाई॥

फिर बहार इस अंदाज़ और इस ठाठ से आई कि सूरज और चाँद तमाशा देखने लगे। ग़ालिब ही का यह शेर सुनिए—

उग रहा है दरो दीवार पै सब्ज़ा ग़ालिब।
हम बयाबाँ में हैं और घर में बहार आई है॥

बहार के दिनों में उन्मत्त प्रेमी घबरा कर वीरानों में चला गया है। घर तो उसका ढह चुका है, छाजन, मुँडेर, दरोदीवार और सहन सब बेमरम्मत हालत में पड़े हुए हैं और घास, काँटे, फूल, लताएँ सब उन पर उग आई हैं। उजड़े हुये घर की यह भी एक बहार है। इसी दृश्य को सोच कर व्यंग के साथ ग़ालिब कहता है कि "हम बयाबाँ में हैं और घर में बहार आई है।"

अब दूसरों के शेर सुनिए—

ख़िरमने गुल से लिपट कर वहीं मर जाना था।
अब करे क्यों गिलए तंगिये दामां कोई॥

—असग़र

जब लाखों फूल खिलते हैं तो फूल चुननेवाले को इसकी हसरत रह जाती है कि मेरा दामन छोटा था, इसमें सब फूल समा नहीं सकते थे। मैं थोड़े ही से फूल अपने दामन में चुन सका। कवि कहता है कि अगर फूलों से इतना लगाव था तो फूलों के ढेर से लिपट कर वहीं जान दे देना था, फूलों में लय हो जाना था, फूलों में ऐसा डूब जाना था कि फिर उभरना चाहें तो न उभरें। जब ऐसा नहीं किया और चुन चुन कर फूल इकट्ठा करने लगे तो दामन के छोटे होने की शिकायत बे फ़ायदा है। संसार का सौंदर्य वह दौलत है जिसमें लय हो जाने के लिए, जिससे लिपट कर मर और मिट जाने के लिए बड़ी आत्मीयता की ज़रूरत है। सूरज, चाँद, तारे, प्रकृति की छटा, मानवी सौंदर्य और जो कुछ भी दुनिया में है उनमें आंतरिक रूप से लय हो जाना चाहिए। वाह्य रूप से उन्हें अपनाना, उन्हें अपनी जायदाद बनाना,

उन्हें अपने घर में, अपने बैंक या ख़ज़ाने के कमरे में, संदूक़ में या दामन में अगर समेटने की चेष्टा की गई तो तृष्णा कभी पूरी नहीं होगी ।

चमन में खेलती है किस मज़े से गुंचा ओ गुल से ।
मगर बादे सबा की पाक दामानी नहीं जाती ॥

—असग़र

वाटिका में हवा कली और फूलों से किस मज़े की छेड़ कर रही है, किस तरह उनसे खेल रही है । लेकिन उस हवा के दामन की पवित्रता नहीं मिटती, उसका झलाझल दामन हमेशा अछूता रहता है । नीति की कितनी नाज़ुक समस्या इस शेर में सुलझाई गई है । जिस तरह कँवल का फूल और पत्ता पानी में रहकर भी नहीं भीगता उसी तरह पवन भी माया के प्रचंड सौन्दर्य अर्थात् फूलों और कलियों से भी लिपट लिपट कर अपनी पवित्रता को, अपने अछूतेपन को बचा लेता है । यह निष्काम चंचलता और निष्काम प्रेम हमारे जीवन में आ जाय तो क्या कहना !

अगरचे साग़रे गुल है तमामतर बेवूद ।
छलक रहा है चमन में मगर शराबे वजूद ॥

—असग़र

यद्यपि फूल का प्याला बिल्कुल निस्सार है, उसका कोई अस्तित्व नहीं (क्योंकि वह अत्यन्त कोमल होता है), हवा के एक झोंके से उसके पुर्ज़े उड़ जाते हैं और यह तितर बितर हो जाता है फिर भी नास्ति के इस साँचे से चमन में अस्तित्व की शराब छलक रही है । कितना नाज़ुक शेर कहा है ! ग़ालिब के उस शेर से इस शेर की ध्वनि मिल जाती है जो हम पहले दे चुके हैं और जो 'लताफ़त बे कसाफ़त' के शब्दों से आरम्भ होता है ।

नासिख़ के शेरों में बनावट अधिक होती है और काव्य-रस कम

लेकिन उनका यह शेर अपना जवाब नहीं रखता। कवि ने बाग़ के फूलों और कलियों से अपनी नज़र हटा कर कहाँ बहार देखी है !

जुनूं पसन्द भी क्या छांव है बबूलों की।
अजब बहार है इन ज़र्द ज़र्द फूलों की ॥

विरानों में उगे हुए बबूलों की छाँव भी प्रेमी की उन्मत्त अवस्था को कितनी प्रिय है। बबूलों के पीले पीले फूलों की अजब बहार है।

इन्शा का यह शेर तो मशहूर है। कहा जाता है कि नवाब सआदत अली ख़ाँ ने उन्हें अपने दरबार मे निकाल दिया, उनका जवान बेटा मर गया, धन-दौलत छिन गया उस वक्त उन्होंने यह शेर कहा था—

न छेड़ ऐ नकहते बादे बहारी राह लग अपनी।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं ॥

ऐ वसन्त-समीर की सुगंध, मुझे न छेड़, अपनी राह लग। तुझे तो अठखेलियां सूझी हैं और हम मलिन और बेचैन बैठे हुए हैं। क्या शेर है, कितना रचा हुआ संगीत है, कितनी नम्र तीव्रता है !

अब से दो सौ बरस के पहले का यह शेर जुरअत के उस्ताद हसरत का है—

बहारें हमको भूलीं, याद इतना है कि गुलशन में ॥
गरेबाँ चाक करने का भी एक हंगाम आया था ॥

बहारें हमको भूलीं (कितनी मधुर भाषा है), बस इतना याद है कि चमन में एक ऐसा समय आया था जिसमें गरेबान फाड़ डालना अनिवार्य हो गया था। जब किसी मार्मिक घटना को कुछ दिन बीत जाते हैं तो उस घटना का रूप-रंग और उसकी रेखाएं, धुँधली पड़ जाती हैं—बहारें हमको भूलीं—लेकिन उस घटना का तीव्र प्रभाव याद

रह जाता है। याद इतना है कि "गुलशन में गरेबां चाक करने का भी एक हंगाम आया था।" हंगाम = समय, अवसर।

बहार और ख़िज़ां की यह सूक्ष्म और रहस्यपूर्ण व्याख्या सुनिए—

बहार नज़रे तग़ाफ़ुल हुई, ख़िज़ाँ ठहरी।
ख़िज़ाँ शहीदे तबस्सुम हुई, बहार हुई॥

—फ़ानी

किसी ने जानबूझ कर अपना ध्यान बहार से फेर लिया; बहार इस अनजान बनने की अवस्था का शिकार होकर ख़िज़ाँ बन गई। उजड़े हुए चमन पर या ख़िज़ाँ के ऋतु पर किसी ने मुस्कुरा दिया, ख़िज़ाँ बहार बन गई। बहार और ख़िज़ाँ स्वयं कुछ नहीं, किसी के ध्यान देने और ध्यान न देने के ही नाम बहार और ख़िज़ाँ हैं। 'किसी' का अर्थ प्रिय है या सौन्दर्य। फ़ानी का दूसरा शेर सुनिए। कितना करुण और संगीतमय है—

चमन से रुख़सते फ़ानी क़रीब है शायद।
कि अबके बूये कफ़न दामने बहार में है॥

कहते हैं मालूम होता है कि चमन से फ़ानी का विदा होना निकट आ गया। बहार के दामन में अबके बरस कफ़न की बू है। बू के माने गंधके भी है, रूप-रंग और तेवर के भी हैं। यानी बहार की हवा, बहार के रंग और बहार के ऋतु में कोई ऐसी बात है, ऐसे लक्षण हैं जिससे अज्ञात रूप से कुछ पता चलता है कि यह बहार अन्त तक मैं नहीं देख सकूँगा, मुझे इस दुनिया से उठ जाना होगा।

अपने कुछ शेर अब आपको सुनाता हूँ—

नामे बहार से ख़िज़ाँ लूटती ताब कै चमन।
आज ख़िज़ाँ के भेस में आती हुई बहार देख॥

दिखावटी बहार के नाम से ख़िज़ाँ कब तक चमन को लूटती?

अर्थात् नाम तो बहार था लेकिन चमन लुट रहा था। सौभाग्य से यह गति रुक गई। देखने में तो अब ख़िज़ाँ आ रही है लेकिन वास्तव में ख़िज़ाँ के भेस में बहार आ रही है। दुनिया में तीस-चालीस बरस पहले साम्राज्यवाद की बहार थी। लेकिन इससे मानव-जाति लुट रही थी। यह नाच-रंग मृत्यु का नाच-रंग था, जीवन का नहीं। अब जो क्रांतियाँ और लड़ाइयाँ हो रही हैं वह देखने में तो पतझड़ का समाँ दिखायेंगी, लोग कटेंगे, मरेंगे, लुटेंगे और जेलख़ाने जायेंगे लेकिन इस आग से जल कर संसार-वाटिका फिर खिल उठेगी और नव-जीवन लहलहाने लगेगा।

उजड़ना सीख दुनिया में अगर सर-सब्ज़ होना है।
गुलिस्ताँ लहलहाये बारहा नज़्रे ख़िज़ाँ होकर॥

अगर तुझको संसार में हरा-भरा होना है तो उजड़ना सीख। सैकड़ों चमन बारम्बार ख़िज़ाँ की भेट होकर फिर लहलहा उठे।

सुना है बादे ख़िज़ाँ के हाथों चमन का दूना निखार होगा।
असर से इस शोलये निहाँ के कुछ और रंगे बहार होगा॥

ख़बर आई है कि बाग़ को झुलस देने वाली हवाओं के हाथों चमन का निखार दूना हो जायेगा। इस गुप्त ज्वाला के असर से बहार का रंग और चमक उठेगा।

बहार ग़ुंचा ब ग़ुंचा चमन में आती है।
क़दम क़दम प छलकता है रंगे फ़ितनागरी॥

वसन्त वाटिका में एक एक कली के साथ आ रही है या एक एक कली खिलाती हुई आ रही है, मानो पग पग पर शरारत और चंचलता का रंग छलक रहा है।

वह देख घटा उट्ठी, वह देख बहार आई।
लेते हैं चमन वाले अँगड़ाई पै अँगड़ाई॥

शेर की भाषा बहुत सरल है। ग़ौर करने की अगर कोई बात है तो यह है कि बहार के मस्त मौसम में वाटिका में खड़े हुए वृत्त, उनकी ऐंठी हुई या पेंच खाती हुई शाख़ें देख कर ऐसा मालूम होता है कि चमन वाले अँगड़ाई पर अँगड़ाई ले रहे हैं। पेड़ और उनकी शाख़ें सब एक ही अवस्था में खिंचे और तने हुए खड़े हैं लेकिन इस दृश्य में वह मस्ती है कि उसकी एक एक झलक एक नयेपन का अनुभव कराती है और एक ही चित्र कई चित्र बन जाता है—"अँगड़ाई पर अँगड़ाई" इसी अद्भुत प्रभाव को व्यक्त करता है।

मैं किसी पहले लेख में अपने स्वर्गीय पिता का यह शेर दे चुका हूँ—

क्या ढूंढती है बाग़ में मेरे तू ऐ ख़िज़ां।
तू जानती है सब के चमन में बहार है।

अब उन्हीं का शेर सुनिये—

दिल को जाँ दादये बहार किया।
यों ख़िज़ाँ को गले का हार किया॥

मैंने अपना दिल बहार पर अर्पण कर दिया, मेरा दिल बहार पर मिटने लगा। परिणाम यह हुआ कि ख़िज़ाँ गले का हार हो गई; यानी बिलकुल उल्टा असर हुआ।

अमीर मीनाई का यह शेर सुनिए—

लचक है शाखों में, जुम्बिश हवा से फूलों में।
बहार झूल रही है ख़ुशी के झूलों में॥

आसी का यह शेर सुनिये—

ख़रामे जल्वा के नक़्शे क़दम थे लाला व गुल।
कुछ और इसके सिवा मौसमे बहार न था॥

लाला व गुल दैवी सौन्दर्य की प्रगति के पग-चिन्ह थे। वसन्त-ऋतु इन पग-चिन्हों के सिवा और कुछ नहीं था।

मैंने इस बातचीत को महाकवि मीर के एक शेर से आरम्भ किया था। इसको समाप्त भी उन्हीं के एक शेर से करता हूँ—

कुछ मौजे हवा पेचाँ ऐ मीर नज़र आई।
शायद कि बहार आई, ज़ंजीर नज़र आई॥

ऐ मीर, हवा की मौजें कुछ पेच खाई हुई नज़र आती हैं यानी उनमें कुछ पेच पड़ गये हैं। कुछ ऐसा मालूम हो रहा है कि बहार आ गई क्योंकि ज़ंजीर (हवा की पेच खाई हुई मौजों को ज़ंजीर कहा है) नज़र आई। हवा की मौजें देखी नहीं जा सकती हैं लेकिन कवि के तीव्र अनुभव ने अदृश्य को दृश्य बना दिया है। इसी से कहा है "ज़ंजीर नज़र आई।" ज़ंजीर का ज़िक्र इसलिए किया कि बहार में प्रेमी पागल हो जाते हैं और पागलों को ज़ंजीर में बाँध कर क़ैदख़ाने में रखते हैं। मीर इतना चौंका हुआ है कि बल खाई हुई हवा की लचक में भी उसे ज़ंजीर नज़र आई जिसमें वह जकड़ दिया जायगा।

नवीं बातचीत

कभी आपने यह सोचा कि अगर मुसलमान अब से एक हज़ार बरस पहले हिन्दुस्तान में न आये होते तो आज वह कौन कौन शानदार और ख़ूबसूरत चीज़ें हैं जो हिन्दुस्तान में नज़र न आतीं। हम लोगों को इतिहास बहुत ग़लत पढ़ाया जाता है, हम लोगों को बताया जाता है कि मुसलमानों के आने से हिन्दुस्तान का नुक़सान हुआ, लेकिन पढ़े-लिखे लोग भी इस बात को नहीं सोचते कि मुसलमानों ने हिन्दुस्तान आकर हमारी ज़िन्दगी को और हिन्दुस्तान के इतिहास को सींचने में, रचाने, सँवारने और निखारने में, उसे हरा-भरा बनाने में बहुत बड़ा हिस्सा लिया है। मुसलमानों के यहाँ आने से नुक़सान हुआ यह समझना ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि जमुना और गंगा के संगम से हिन्दुस्तान का नुक़सान हुआ, या नदी के बहने से धरती का नुक़सान हुआ। अगर इस देश में अँगरेज़ न भी आते तो भी साइन्स की तरक़्क़ी होती; कारख़ाने, रेल और बिजली हमारी ज़िन्दगी के अंश बन जाते और पंचायती राज यहाँ क़ायम हो जाता। जापान इसकी खुली हुई मिसाल है। लेकिन मुसलमानों से हमारा सम्पर्क सिर्फ़ बाहरी चीज़ नहीं थी बल्कि भीतरी चीज़ भी थी। उनका और हमारा मिलना दो आत्माओं का मिलना था और बिना उनके आये न हिन्दी साहित्य उन्नति करता, न हमारा संगीत और हमारी नृत्य-कला इतना निखरती और न हमारी अन्य कलाएँ और व्यवसाय इतने उन्नतिशील हो सकते।

जो कुछ भी हो यह बात सोचने की ज़रूर है कि देशी भाषाएँ और उनके साहित्य मुस्लिम काल में पहले पनपे और लहलहाये। ख़ैर, यह तो भूमिका थी लेकिन इतना तो साफ़ ज़ाहिर है कि अगर मुसलमान

न आते तो उर्दू भाषा और साहित्य का जन्म ही न होता (और अगर उर्दू का जन्म न होता तो आधुनिक हिन्दी यानी खड़ी बोली इतनी उन्नति करती या नहीं इसमें सन्देह है)। उर्दू भाषा और साहित्य में, उसके रूपकों और उसकी मिसालों में, उसके अलंकारों और उसकी उपमाओं में मुसलमानों ने अरब और फ़ारस की सभ्यता और साहित्य से ऐसी चीज़ें ले लीं जो थीं तो अरब और फ़ारस की लेकिन उनमें वह संसार-व्यापी गुण हैं जो उन्हें विदेशी और अपरिचित होने के दोष से बचा लेते हैं। गुलो-बुलबुल, साक़ी और शराब और मैख़ाना, बहार और पतझड़, बाग़ और जंगल, दैरो-हरम (मन्दिर और काबा), क़फ़स और आशियाँ, शमा और परवाना वग़ैरह रूपकों को विदेशी कह कर नहीं टालना चाहिए। क्या आपको मालूम नहीं कि इन रूपकों को ग्रहण करके क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम ने बंगला साहित्य में कैसा नया चमत्कार पैदा कर दिया और उसमें नई रूह दौड़ा दी। अगर यह चीज़ें विदेशी होतीं तो आज हिन्दी का हर साहित्यिक उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का सफल अनुवाद करने का चोर अपने दिल में न रखता।

हाँ, तो अरब और ईरान के जीवन, वहाँ की सभ्यता और वहाँ के साहित्य में एक चीज़ कारवाँ और क़ाफ़िला भी है। अरब और फ़ारस के हज़ारों मील लम्बो-चौड़ी रेगिस्तानों की कल्पना कीजिए। इन रेगिस्तानों में किसी तरह के जीवन का विकास होना, पत्थर पर दूब जमने से भी बढ़कर आश्चर्यजनक है। लेकिन पृथ्वी की ज़िन्दगी थी कि उबली पड़ती थी। जल, थल, पहाड़, रेगिस्तान, बर्फ़िस्तान, ज़मीन का कोई टुकड़ा ऐसा नहीं बचा जहाँ ज़िन्दगी फट न पड़ी हो। अस्तित्व में कितनी शक्ति है! यह जीवन और अस्तित्व कदापि भ्रम और माया नहीं हैं, यह साक्षात सत्य हैं। तो इन रेगिस्तानों में सैकड़ों और हज़ारों मील की दूरियों पर मनुष्यों की छोटी छोटी टुकड़ियाँ आबाद हैं। यह टुकड़ियाँ अनेक सभ्यताओं, गगन-स्पर्शी और जगत-व्यापी आन्दोलनों का हिंडोला बन गईं। यहाँ से वो आन्धियाँ उठीं जिन्होंने विनाश और

पुनर्जीवन अथवा पुनर्निर्माण का तांडव-नृत्य नाचा और अपने प्रबल झकड़ों से दुनियाँ को हिला दिया। संसार के कारबार और व्यवहार के लिए, संसार की प्रगति के लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज़ इन रेगिस्तान-निवासियों की ज़िन्दगी में यात्रा या सफ़र था। मानवी समाज एक कारवाँ और क़ाफ़िला है, जीवन एक यात्रा है। जिनकी दृष्टि और कल्पना, जन्मजन्मांतर एक गाँव में जीवन काट देने में सीमित है, जो घर से निकलते हुए ख़ून थूक देते हैं वह इस यात्रा का महत्व क्या समझेंगे? लेकिन घोड़ों और ऊँटों पर और पा पेयादा आदमियों की छोटी छोटी जो टुकड़ियाँ जन्म भर सफ़र करती रहती हैं जंगलों से, रेगिस्तानों से, पहाड़ियों और घाटियों से, हज़ारों ख़तरनाक स्थानों और इक्का-दुक्का रमणीय स्थानों से, कुछ उन्हीं को मालूम है कि यात्रा का क्या महत्व है।

यहीं से उर्दू साहित्य में कारवाँ और क़ाफ़िले का रूपक आया। इस रूपक के संबंध में चन्द शब्द और वाक्य सुन लीजिए—१ मंज़िल, २—दश्तेग़ुर्बत (परदेस का वह बंजर या बन जहाँ क़ाफ़िला पड़ाव डाले), ३ रहज़न (अरब के बद्दू या अन्य डाकू जो क़ाफ़िले पर छापा मारते हैं), ४ रहबर, रहनुमा, मीरे कारवाँ या क़ाफ़िला सर्दार (पथ-प्रदर्शक, या कारवाँ का सर्दार), ५ शामे ग़रीबाँ (परदेसियों की सन्ध्या), ६ सुब्हे वतन (घर की या जन्मस्थान की वह सुबह जो पलट आने वाले मुसाफ़िरों को इतनी प्रिय होती है), ७ बाँगे जरस, नारये जरस या नालये जरस (बीहड़ जंगली और रेगिस्तानी रास्तों से गुज़रने वाले कारवाँ के पास अपने भूले-भटके साथियों के पथ-प्रदर्शन के लिए और बिछुड़े हुओं के क़ाफ़िले से आ मिलने के लिए एक बिगुल होता है जो रह-रह के बजाया जाता है और उसी की आवाज़ पर भूले-भटके फिर क़ाफ़िले से आ मिलते हैं), ८ नक़्शे क़दम या नक़्शे पा (पद-चिन्ह), ९ ग़ुबारे कारवाँ या गर्दे कारवाँ अर्थात् कारवाँ के चलने से जो धूल उड़ती है। यह कुछ शब्द हैं जो कारवाँ के संबन्ध में उर्दू

कविता में लाये जाते हैं लेकिन इन शब्दों के जौहर अच्छी पंक्तियों ही में खुलते हैं। सुनिए—

रफ़्तगां में जहाँ के हम भी हैं।
साथ इस कारवाँ के हम भी हैं॥

—मीर

संसार के राहियों और मुसाफिरों में हम भी सम्मिलित हैं। दूसरे मिसरे का अर्थ साफ़ है। दोनों मिसरों में 'हम भी हैं' के दोहराने से मीर ने जन-समुदाय से, मानवता से अपना नाता कितने विनम्र और प्रौढ़ रूप से विदित किया है। 'भी' खड़ी बोली के उन थोड़े से शब्दों में है जिसका अच्छा प्रयोग पंक्ति को चमका देता है। मीर की इसी ग़ज़ल का एक और शेर भी सुन लीजिए जिसका विषय कारवाँ और क़ाफ़िला नहीं है—

वज्हे बेगानगी नहीं मालूम।
तुम जहाँ के हो वाँ के हम भी हैं॥

इस निष्ठुरता और विमुखता का कारण समझ में नहीं आता। हे प्रिये! तुम जहाँ के हो वहीं के हम भी हैं। इसमें 'के' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। अगर कहा जाय कि तुम जहाँ से आये हो वहीं से हम आये हैं तो शेर में वह बात पैदा नहीं होगी जिसे जादू कहते हैं और 'जहाँ' के शब्द में जो मर्म और रहस्य छिपा हुआ है, मानव-जाति के एक श्रोत की तरफ़ से निकलने का जो संकेत है उस पर ध्यान दीजिए। शायद पंक्ति में मानव-जाति के, स्त्री और पुरुष के, प्रेमी और प्रिया के सम्बन्ध का भविष्य छिपा हुआ है। जो रुकावटें और उलझी हुई गुत्थियाँ प्रेमियों के परस्पर सम्बन्ध में हमारी सभ्यता की ग़लत प्रवृत्तियों ने पैदा कर रखी हैं उन पर यह शेर एक अनुपम व्यंग है। इस शेर के सामने ग़ालिब का यह शेर अपना चमत्कार खो देता है—

हमसे खुल जाओ बवक़्ते मै परस्ती एक दिन।
वर्ना हम छेड़ेंगे रख कर उज्रे मस्ती एक दिन॥

शराब पीते वक़्त एक दिन हमसे खुल जाओ, नहीं तो हम मस्ती या नशे के बहाने से एक दिन तुमको छेड़ेंगे। ग़ालिब का बल्कि एक दूसरा शेर कुछ कुछ मीर के शेर तक पहुँच रहा है और उसकी शैली में मीर की शैली का प्रभाव साफ़ नज़र आ रहा है—

हम हैं मुश्ताक़ और वो बेज़ार।
या इलाही ये माजरा क्या है॥

हम तो आतुर हैं और वह विमुख। हे परमात्मा, यह क्या माजरा है, क्या समस्या है, क्या बात है? अच्छा तो क़ाफ़िले के विषय पर मीर का यह शेर भी सुनिए—

रंगे गुलोबूये गुल होते हैं हवा दोनों।
क्या क़ाफ़िला जाता है! तू भी जो चला चाहे॥

गुलाब के फूलों का रंग और उनकी सुगन्ध दोनों हवा हो रहे हैं अथवा लय और लीन हो रहे हैं। दूसरे मिसरे का अर्थ क्या बताऊँ; पढ़िए और झूम जाइये। क्या सन्देश दिया है! प्रकृति के इस अदृश्य क़ाफ़िले के साथ मानव-जाति को चलने के लिए ललकारा है। दूसरी पंक्ति के दोनों टुकड़े—'क्या क़ाफ़िला जाता है!' ('क्या' के शब्द में आश्चर्यमय और चकित हो जाने की जिस अवस्था की ओर संकेत है, उस पर ध्यान दीजिए और हिन्दी कविता की भाषा में भी इसी तरह के चमत्कार पैदा कीजिए) और 'तू भी जो चला चाहे' ('जो' के शब्द का जादू देखिए—सावधानी से पढ़िए।

कुछ इसी भाव और विचार से मिलता हुआ मसहफ़ी का यह शेर है—

चले भी जा जरसे गुंचा की सदा पै नसीम ।
कहीं तो क़ाफ़िलये नौबहार ठहरेगा ।।

ऐ नसीम (समीर), चटकती हुई कलियों के जरस की आवाज़ पर चले भी जा (नसीम स्त्रीलिंग है, लेकिन किसी स्त्री से भी जब वे रुके हुए कुछ करने को कहेंगे तो यही कहेंगे 'सितार बजाये जा' 'अपनी बात कहे जा', 'चले भी जा' इत्यादि)। बसन्त का कारवाँ कहीं न कहीं तो ठहर जायगा। तू यह न डर कि बसन्त के कारवाँ के साथ चलते चलते तेरे पाँव थक जाँयगे। यद्यपि यह मीर के शेर का जवाब नहीं हो सका फिर भी बहुत शानदार शेर है। 'कहीं तो' में जो बोली-ठोली या ठठोल की ख़ूबसूरती आ गई है उस पर ध्यान दीजिए।

कारवाँ के विषय पर ग़ालिब का एक शेर सुनिए—

चलता हूँ थोड़ी दूर हरेक तेज़ रौ के साथ।
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं ।।

कहते हैं कि संसार और जीवन की राह में मैं थोड़ी दूर तक हर उस आदमी के साथ हो लेता हूँ जो तेज़ चलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मैं अभी अपने सच्चे पथ-प्रदर्शक को नहीं पहचानता। कितनी सूझ-बूझ की बात ग़ालिब ने कही है! सर्दारे कारवाँ या मीरे कारवाँ अथवा पथ-प्रदर्शक ख़्वाह म ख़्वाह उस आदमी को नहीं बना देना चाहिए जो हल्ला बोल दे और तेज़ चल कर कारवाँ से ऐसा धावा बोलवा दे कि कारवाँ बरबाद हो जाय।

अब आतश का एक शेर फिर सुनिए जो पहले कभी सुना चुका हूँ—

न पूछ हाल मेरा चोबे ख़ुश्के सहरा हूँ।
लगा के आग मुझे क़ाफ़िला रवाना हुआ ।।

कारवाँ या क़ाफ़िला सहरा अर्थात् जङ्गल में अक्सर पड़ाव डालता है और वहाँ आग जलाई जाती है तापने के लिए, खाना पकाने के के लिए, रोशनी के लिए, डाकुओं और जंगली जानवरों से बचने के लिए। क़ाफ़िला तो रात भर पड़ाव डाल कर रवाना हो गया। आतश कहता है कि मैं उस लकड़ी के समान हूँ जिसे क़ाफ़िले ने थोड़ी देर पड़ाव डालकर रोशनी और गर्मी के लिए जला दिया था।

हाली का शेर सुनिए—

यारामे तेज़ गाम ने मंज़िल को जा लिया।
हम महवे नालये जरसे कारवाँ रहे॥

हमारे तेज चलने वाले साथी मंजिल पर पहुँच गये और हम जरस या बिगुल की आवाज़ सुनने ही में तल्लीन और निमग्न रहे और जहाँ के तहाँ खड़े रहे। कभी कभी कर्म का सन्देश, आगे बढ़ने का सन्देश हमको इतना मस्त कर देता है कि हम धर्म कर्म और आगे बढ़ना सब भूल जाते हैं। कारवाँ के बिगुल और डंका इसलिए नहीं हैं कि उनको सुन कर अपनी जगह पर हम झूमते रह जाँय बल्कि आगे बढ़ने के लिए हैं।

कहा जाता है कि जब Cicero कोई शानदार व्याख्यान देता था तो इटली वाले कहते थे कि कितना शानदार व्याख्यान है लेकिन जब Demosthenese कोई व्याख्यान देता था तो एथेन्स-निवासी कहते थे—चलें अपने शत्रु स्पार्टा वालों से लड़ें। कारवाँ का बिगुल संगीत का आनन्द लेने के लिए नहीं है, न लड़ाई का बिगुल।

इक़बाल का यह शेर सुनिए—

कारवाँ थक कर फ़िज़ाँ के पेचो ख़म में रह गया।
मेहरो माहो मुश्तरी को हम-अना समझा था मैं॥

नक्षत्रों का कारवाँ अनन्त वायु-मंडल या अनन्त आकाश की वादियों और घाटियों या भूल-भुलैया में थक कर रह गया। मैं जो सूर्य,

चन्द्रमा और तारों को अपना साथी समझे हुए था, इन सबसे आगे निकल आया। मानव-जाति प्रकृति से आगे बढ़ती जा रही है और उसका निर्जीव प्रकृति से साथ छूटता जा रहा है। विकासवाद के इस रहस्य की ओर शेर में संकेत किया गया है।

वतन से क्या, कि हवाये वतन से हैं बेज़ार।
लिपट रहे जो बगूलों से दश्ते ग़ुरबत के॥

—यगाना

वतन क्या, वतन की हवा से भी वह लोग विमुख हैं जो परदेस के जंगलों में उठने वाले बवंडरों से लिपट रहे। परदेश यात्रा की भावनाओं का कितना करुण वर्णन है!

बगूले या बवंडर पर महाकवि अकबर का यह शेर सुनिए—

हर चन्द बगूला मुज़्तर है, एक जोश तो उसके अन्दर है।
एक रक़्स तो है, एक कैफ़ तो है, लाचार सही, मजबूर सही॥

यद्यपि हर तरह से बवंडर बेबस है लेकिन उसके अन्दर एक जोश तो है, एक नृत्य तो है, एक मस्ती तो है—वह लाख लाचार सही, लाख मजबूर सही। किस शान का शेर कहा है! अन्दाज़ा बयान में क्या तैयारी और सजावट है!

वफ़ा रामपुरी का शेर सुनिए—

चले हंगामये कसरत से क्या दामन कशाँ होकर।
दो आलम पीछे आते हैं ग़ुबारे कारवां होकर॥

स्वर्गीय सौन्दर्य से कहा है कि अनेक की भीड़-भाड़ से दामन बचाते हुए कहाँ चले! देखो, दोनों संसार तुम्हारे पीछे कारवाँ की धूल बन कर चले आ रहे हैं। दूसरी पंक्ति में लोक परलोक यानी दोनों आलम का ग़ुबारे कारवाँ बन कर अदृश्य सौन्दर्य के पीछे पीछे आना

किस विस्तृत और व्याप्त कल्पना का सबूत देता है। मालूम होता है कि हम देश और काल से अलग खड़े होकर ब्रह्मांड को आदि कणों या परमाणुओं में तरंलित होता हुआ और किसी अदृश्य शक्ति के पीछे वेग से बढ़ता हुआ देख रहे हैं।

लेकिन इतनी जटिल, सूक्ष्म, गहन और रंगारंग बातें करने में भी उर्दू कवियों ने अपने काव्य-कौशल का सबूत दिया है। यह नहीं किया कि टेढ़े-मेढ़े, टूटे-फूटे, ग़लत-सलत अधूरी बातें भद्दे रूप से कह दें और सुनने वाले या पढ़ने वाले उनको समझने के लिए झक मारें। उनका जो वाक्य है, पूर्ण वाक्य है; अर्थ लगाने में खींचातानी नहीं करनी पड़ती है। सुगमता और सरलता के साथ पेचीदा से पेचीदा बातें नाज़ुक से नाज़ुक ख़याल कहे गये हैं। ख़ास कर देखने की यह चीज़ है कि क्रियायें हर वाक्य में कितने भरपूर तरीक़े से आई हैं; ऐसा नहीं कहा कि दो आलम पीछे आते ग़ुबारे कारवाँ होकर बल्कि 'दो आलम पीछे आते हैं ग़ुबारे कारवाँ होकर।' इसी तरह और पंक्तियों में भी शुद्ध और पूर्ण क्रियाओं पर नज़र डालिए जिनके बिना सिर्फ़ क्रिया अपूर्ण नहीं रह जाती बल्कि भाव भी अधमुआ हो जाता है।

अब मैं कारवां और क़ाफ़िला के विषय पर या उनके सम्बन्ध में कुछ अपने शेर सुना कर आज की बात ख़त्म कर दूँगा।

हर आवाज़े जरस पर इक सदाये बाज़गश्त आई।
बहुत है इस क़दर भी, ख़ैर, यादे रफ़्तगाँ होना॥

जरस की हर आवाज़ पर पीछे से किसी ने आवाज़ नहीं दी, बिछुड़े हुए चुप रहे, जरस ही की आवाज़ पलट कर आई। ख़ैर, परदेश यात्रियों की इतनी याद भी काफ़ी है। इस शेर में एक बहुत करुण व्यंग है। घर वाले या पीछे छूटे हुए साथी या अन्य लोग जरस की आवाज़ पर बिल्कुल चुप रहे। जरस ही की आवाज़ दरो-दीवार, पहाड़ियों और घाटियों से टकरा कर वापस आई। उसी को बढ़ते हुए कारवाँ ने बहुत समझा। छूटी हुई मंज़िलों से कोई

आवाज़ तो आई, चाहे वो आवाज़ अपने ही जरस की पलटी हुई आवाज़ हो।

एक को एक को ख़बर मंज़िले इश्क़ में न थी।
कोई भी अहले कारवाँ शामिले कारवाँ न था॥

प्रेम की मंज़िल से कारवाँ गुज़र रहा है लेकिन किस दिशा में? एक को एक को ख़बर नहीं है, सब की जान पर बनी है अर्थात् कारवां वालों में कोई भी ऐसा नहीं जिसे उसकी सुधि हो कि वह कारवाँ में सम्मिलित है। दुनिया में सब को अपनी अपनी पड़ी रहती है, समाज के व्यक्तियों को इसका ध्यान कहाँ आता है कि उनका जीवन सामूहिक और संगठित जीवन है। जीवन-यात्रा में अकेलेपन के इस अनुभव की ओर उपर्युक्त शेर में संकेत किया गया है।

झपक रहीं हैं ज़माने मकाँ की भी आँखें।
मगर है क़ाफ़िला आमादये सफ़र फिर भी॥

काल और देश की भी आँखें झपक रही हैं। आदि काल से जीवन-यात्रा को देखते देखते कुछ ऐसा मालूम होता है कि देश और काल भी थक से गये हैं लेकिन मनुष्य-जाति का कारवाँ ठहरने का नाम नहीं लेता और फिर सफ़र पर आमादा है।

उजाली थी शब, गर्दे रह चाँदनी थी।
फ़रिश्तों के कुछ कारवाँ जा रहे थे॥

इस शेर में कल्पना के एक बहुत सूक्ष्म अनुभव को व्यक्त किया गया है। उजाली रात थी, चारों तरफ़ छिटकी हुई चाँदनी ऐसी मालूम होती थी कि गोया वह राह में उड़ती हुई धूल है। वायु-मंडल से फ़रिश्तों या देवताओं के कुछ कारवाँ गुज़र रहे थे जैसे कोई स्वर्गीय समुदाय आकाश के नीचे से गुज़र रहा हो।

दौरे फ़लक कुछ रुका रुका सा।
क़ाफ़िला कुछ ठहरा ठहरा सा॥

नक्षत्रों की गति कुछ रुकी रुकी सी प्रतीत होती है और ज़िन्दगी का कारवां भी उसके साथ कुछ स्थगित सा मालूम हो रहा है। मालूम होता है कि दुनिया अगला क़दम उठाते हुए कुछ सोच रही है। 'ठहरा ठहरा,' 'रुका रुका' और 'सा' का शब्द ध्यान देने योग्य हैं।

बिछुड़े हुए अब और ही ढूँढें दलीले राह।
इतनी बलन्द गर्द रहे कारवाँ नहीं॥

बिछुड़े हुए लोग अब और ही दलीले राह अर्थात् राह दिखाने वाला ढूँढ़ें क्योंकि आगे बढ़ जाने वाले कारवां से उड़ी हुई धूल इतनी ऊँची नहीं है कि पीछे रह जाने वाले उसको देख कर राह का पता चला सकें।

हैं राज़दाने ग़मे कारवाने नुह अफ़लाक।
शकस्ते रंगे रुख़े रोज़गार हैं हम लोग॥

हम लोग नवों आसमानों (उर्दू कविता में कभी सात और कभी नौ आकाश या नक्षत्र-मंडल माने जाते हैं) के ग़म का भेद जानते हैं। काल या ज़माना के भेदों के उड़ते हुए रंग हम लोग हैं। ग़म अनुभव करने वाले के भेदों का रंग उड़ जाता है। यथार्थ में तो ग़म ब्रह्मांड का ग़म है लेकिन वह ग़म मानव-जाति के हृदय में पूरी टीस और कसक के साथ प्रतिबिम्बित होता है और इस तरह ब्रह्मांड के ग़म का बोझ मनुष्य पर आ पड़ता है। मनुष्य का उतरा हुआ चेहरा मानो ब्रह्मांड के पीड़ित चेहरे की तस्वीर है।

न रहज़नों से रुके रास्ते मुहब्बत के।
वो क़ाफ़िले नज़र आये लुटे-लुटाये हुए॥

जब कोई ख़तरा किसी जानवर से या लुटेरों से होता है तो वहाँ की राह रुक जाती है। इस शेर में यह बात कही गई है कि प्रेम की राह डाकुओं या लुटेरों से रुक नहीं सकी। देखो क़ाफ़िलों को यद्यपि लुटेरों ने लूट लिया तो भी लुटे-लुटाये हुए क़ाफ़िले पलट जाने के

बदले आगे बढ़ते हुए नज़र आ रहे हैं। वो क़ाफ़िले नज़र आये लुटे-लुटाये हुए।

इश्क़ ही से हैं मंज़िलें आबाद।
कारवां कारवां पुकार भी है॥

तमाम रास्ता, तमाम मंज़िलें प्रेम ही से आबाद हैं! कोई स्थान नहीं जहाँ प्रेम न हो। वाह रे घबराहट कि हर कारवाँ प्रेम ही को पुकार रहा है, प्रेम ही को ढूँढ रहा है। 'कारवां' शब्द को दुहरा कर प्रत्येक कारवां में प्रेम के लिए जो बेताबी है उसका चित्र खींचा गया है। जैसे कहें घर घर पुकार मची हुई है।

ये हैं कुछ पंक्तियाँ क़ाफ़िला और कारवाँ के विषय पर जो उर्दू कवियों ने कही हैं। हिन्दू जाति या कोई जाति जो पाँव तोड़ कर घर में बैठ जाती है ऐसी जाति के लिए जीवन को एक भरपूर कारवाँ समझना उसकी सभ्यता में प्रगतिशीलता की एक प्रेरणा पैदा कर देगी। क्या इन पंक्तियों से, जीवन-यात्रा के इन चित्रों से, हमारे जीवन में एक उभार नहीं पैदा होता? क्या बैठे हुए दिल बेचैन नहीं हो जाते और क्या हम इस ख़याल से तड़प नहीं उठते कि ज़िन्दगी के मैदान में क़दम मारें? क्या हम उर्दू कवि नसीम की इस पुकार पर उठ खड़े होने के लिए तैयार नहीं हो जाते—

नसीम जागो, कमर को बाँधो, उठाओ बिस्तर कि रात कैसी है।